



**MAHĀKAVI KĀLIDASA KI KRITIYON MEIN
PRATYABHIJNA DARSHANA KE TATVA
(ELEMENTS OF PRATYABHIJNA SYSTEM IN
THE WORKS OF KALIDASA)**

Dissertation submitted for the Degree of
Master of Philosophy
IN
SANSKRIT

BY
MISS FARHA

Under the supervision of
DR. MRS. SALMA MAHFOOZ
Reader

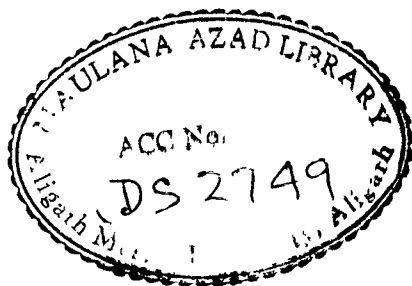
DEPARTMENT OF SANSKRIT
ALIGARH MUSLIM UNIVERSITY
ALIGARH (INDIA)

1994

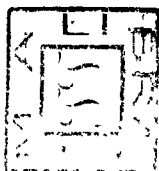
Put In Computer



DS2749



CHECKED-2002



No. 861 /Sanskrit
Date 1-3-1995

Dr. (Mrs.) SALMA MAHFOOZ
M.A. (Hindi), M.A. (Sanskrit)
Ph. D. (Sanskrit)
Reader in Sanskrit

Women's College
Aligarh Muslim University
Aligarh-202002 (India)

CERTIFICATE

This is to certify that Miss Farha has completed her M.Phil dissertation entitled "ELEMENTS OF PRATYABHIJNA SYSTEM IN THE WORKS OF KĀLIDĀSA" under my supervision and guidance. It is her own work and to the best of my knowledge it has not been submitted for the award of any degree in this university or anywhere else.

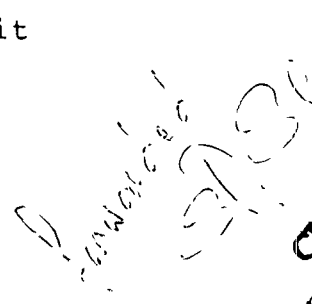
I am satisfied with the efforts made by her in this connection.


Dr. (MRS.) SALMA MAHFOOZ

Department of Sanskrit

Aligarh :

Feb. 2, 1995.


CHAIRMAN
Department of Sanskrit
Aligarh Muslim University
ALIGARH 1/3/95

प्राक्कथन

कालिदास के ग्रन्थ संस्कृत साहित्य के गौरव ग्रन्थ हैं। कालिदास की कृतियों का दार्शनिक धरातल पर अध्ययन एवं शोध बहुत पहले आरम्भ हो चुका है। कालिदास को शैवमतावलम्बी ठहराते हुए उन्हें अद्वैत वेदान्त की मान्यताओं से प्रभावित बताया गया है। विद्वानों को यह मान्यताएँ इतनी शक्ति एवं आग्रह के साथ स्थापित हुई हैं कि इनको अवहेलना करना दुष्कर प्रतीत होता है। यह अद्भुत तथ्य है कि कालिदास की कृतियों में भारतीयदर्शन, चिन्तन के अनेक स्रोतों से विचार बिन्दु आकर मिलते हैं। परन्तु कालिदास की कृतियों की दार्शनिक पृष्ठभूमि का आधारभूत दर्शन काश्मीर शैवदर्शन अथवा प्रत्यभिज्ञादर्शन हो है- इस स्थापना को सहज पृष्ठित हो जातो है। कालिदास की कृतियों का रचनासूत्र प्रत्यक्षतः शैवदर्शन में प्राप्त हो जाता है। प्रत्यभिज्ञादर्शन कालिदास की कृतियों का रचनासूत्र अथवा प्रकृति है। इसे अन्य शब्दों में कालिदास की कृतियों की आत्मा भी कहा जा सकता है। यह कोई बाहर से आरोपित विचार या प्रभाव नहीं है।

प्रत्यभिज्ञादर्शन का एक ही प्रमुख तत्त्व है- वह है शिवतत्त्व और अन्य सभी तत्त्व शिव की शक्तियों के अपरनाम हैं। कालिदास की कृतियों में यह शिवतत्त्व छाया हुआ है। उनके आराध्य शिव हैं। वह शिव की ही सब कुछ मानते हैं। उनकी रचनाओं के समस्त नान्दो श्लोक शिवस्तवन से युक्त हैं। कुमारसम्भवम् महाकाव्य में तो देवधिदेव शंकर अपने पूर्ण वैभव के साथ प्रतिष्ठित हैं। कालिदासनेबहुत ही कुशलता से अपनी कृतियों में प्रत्यभिज्ञादर्शन के तत्त्वों का समावेश किया है। कालिदास की कृतियों में निहित प्रत्यभिज्ञादर्शन के तत्त्वों की ही प्रस्तुत शोधकार्य के द्वारा प्रकाश में लाने का प्रयास किया गया है। इस शोधग्रन्थ का केवल छह अध्यायों में निबद्ध है तथा परिशिष्ट भाग भी सम्मिलित है। प्रथम अध्याय है- महाकविकालिदास : व्यक्तित्व एवं कृतित्व। जिसमें कालिदास की जन्मतिथि एवं जन्म-स्थान सम्बन्धी प्रचलित मतों को देते हुए कालिदास का जन्म स्थान काश्मीर सिद्ध करना अभिप्रेत है तथा कृतियों का संक्षिप्त परिचय देते हुए विवादास्पद कृतियों के सम्बन्ध में कुछ रोचक तथ्य प्रस्तुत किए गए हैं। द्वितीय अध्याय है - प्रत्यभिज्ञादर्शन का साहित्य एवं साहित्यकार जिसमें प्रत्यभिज्ञादर्शन

के साहित्य को संक्षिप्त रूपरेखा दी गई है। इस साहित्य को आधार बनाकर डॉ. कालिदास की कृतियों में प्रत्यभिज्ञादर्शन के तत्त्वों को दर्शाया गया है। तृतीय अध्याय है- प्रत्यभिज्ञादर्शन के प्रमुख तत्त्व। इस अध्याय में प्रत्यभिज्ञादर्शन के प्रमुख तत्त्वों का वर्णन है। चतुर्थ अध्याय है जगत् सम्बन्धी विविध तत्त्व जिसमें सृष्टि, जगत्, कारणावाद आदि का विवेचन है। पंचम अध्याय है कालिदास के नाटकीय कथानक एवं प्रत्यभिज्ञादर्शन इसमें कालिदास के नाटकीय कथानकों का रचनासूत्र, प्रत्यभिज्ञादर्शन में निहित बताया गया है। षष्ठम अध्याय- मोक्ष। इसमें प्रत्यभिज्ञादर्शन को मोक्ष सम्बन्धी मान्यताओं की अद्वैत वेदान्त की मान्यताओं से तुलना की गई है। तथा प्रत्यभिज्ञादर्शन के अनुसार मोक्ष का स्वरूप मोक्षोपायों आदि का वर्णन है। परिशिष्ट भाग में चिदगगनचन्द्रिका में प्रत्यभिज्ञादर्शन के तत्त्वों को दर्शाया गया है तथा प्रत्यभिज्ञादर्शन के पारिभाषिक शब्दों के अर्थ को स्पष्ट करने हेतु पारिभाषिक शब्दकोश भी दिया गया है।

इस शोधकार्य के सम्पन्न होने पर मैं इस शोधकार्य को निर्देशिका डॉ. श्रीमती सलमा महफूज़ के स्नेह, सहयोग एवं विद्वतापूर्ण निर्देशन के लिए हृदय से आभार व्यक्त करती हूँ। तथा शोधकार्य सम्बन्धी व्यवहारिक सुझावों के लिए प्रो. महफूज़ रहमान का भी धन्यवाद करती हूँ।

एम.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद जब शोधकार्य करने की इच्छा जागृत हुई तो शोध का संकल्प विभिन्न विषयों को भ्रान्ति में भटकने लगा। इस भ्रान्ति का निवारण किया गुरुवर प्रो. एस. पी. सिंह, भूतपूर्व अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, एवं संकायाध्यक्ष, आर्ट कैकेल्टी, ने तथा उन्होंने ही इस विषय पर शोधकार्य करने की अनुमति तथा दिशा दी। मैं सदैव उनको आभारी रहूँगी।

मैं. विभागाध्यक्ष प्रो. एस.आर. शर्मा का धन्यवाद करती हूँ, जिन्होंने मेरे अन्दर ऐसी शोधपरक दृष्टि विकसित की जो अध्ययन के प्रत्येक क्षेत्र में दीप स्तम्भ का कार्य करेगी।

शोध सम्बन्धी विभिन्न रोचक चर्चाओं द्वारा मेरा ज्ञानवर्धन करने के लिए मैं डॉ. एस.पी. शर्मा का धन्यवाद करती हूँ।

महत्वपूर्ण जानकारों एवं सहयोग प्रदान करने हेतु मैं प्रखरप्राध्यापक डॉ. सदाशिव

कुमार द्विवेदी का धन्यवाद करती हूँ।

प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से विभिन्न प्रकार का सहयोग प्रदान करने के लिए मैं संस्कृत विभाग के समस्त गुरुजनों के प्रति आभार प्रकट करती हूँ। मैं सेमरेनार इंचार्ज नुज़हत किदवई तथा मौलाना आज़ाद लाइब्रेरी के समस्त कर्मचारियों एवं अधिकारियों का धन्यवाद करती हूँ।

इस शोधकार्य को करते हुए कुछ निराशा एवं पलयान के क्षण भी आए जिनमें उत्साहवर्धन का कार्य किया मेरी चाची श्रीमती अनवर इरफ़ान ने। मैं अपने प्रेरणा-स्रोत मम्मो-पापा का हृदय से धन्यवाद करती हूँ तथा विविध प्रकार का सहयोग देने के लिए मेरे परिवार के समस्त सदस्य शतशः धन्यवाद के पात्र हैं।

मैं अपनी सोनियर चन्दावानों जैदी तथा नाजनीन परवीन का भी धन्यवाद करती हूँ।

शोध-प्रबन्ध में टंकण सम्बन्धी अशुद्धियाँ दूर करने में मदद करने के लिए मैं सुनीता का धन्यवाद करते हुए अपने मित्र शालिमा तबस्तुम का भी धन्यवाद करती हूँ।

मैं श्री एच.एम. त्रिपाठी की हृदय से आभारी हूँ, जिन्होंने समयाभाव रहते हुए भी इस शोध-प्रबन्ध का टंकण बड़ी तन्मयता से किया है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में जो त्रुटियाँ एवं टंकण सम्बन्धी अशुद्धियाँ रह गई हैं, उनके लिए मैं क्षमा प्रार्थी हूँ।

विद्वत्जनकृपाकांक्षी


फ़राह

विषयानुक्रमिका

महाकवि कालिदास की कृतियों में प्रत्यभिज्ञादर्शन के तत्त्व

पृष्ठ संख्या

प्रथम अध्याय :

महाकवि कालिदास : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

1 - 32

1. जन्म-तिथि
2. जन्म-स्थान
3. कृतियाँ

द्वितीय अध्याय :

प्रत्यभिज्ञादर्शन का साहित्य एवं साहित्यकार

33 - 57

1. काश्मीर शैव मत
 - . क. काश्मीर शैवदर्शन के विविध नाम
 - . ख. काश्मीर शैवदर्शन की शाखाएँ
 - . ग. काश्मीर शैवदर्शन एवं आगम
 - . घ. प्रत्यभिज्ञा
2. प्रत्यभिज्ञादर्शन का साहित्य एवं साहित्यकार
 - . क. आगम साहित्य
 - . ख. स्पन्दशाखा और प्रत्यभिज्ञा शाखा का साहित्य
 - . ग. प्रत्यभिज्ञादर्शन का अन्य दर्शनों से सम्बन्ध

तृतीय अध्याय :

प्रत्यभिज्ञादर्शन के प्रमुख तत्त्व

58 - 87

1. तत्त्व
 - . क. परमशिव और तत्त्व
 - . ख. शिव और तत्त्व
 - . ग. शिव तत्त्व
2. शक्ति

- क. शिव-शक्ति
- ख. शक्तिपंचक
- ग. अद्वैतवाद
- घ. सामरस्य
- ङ. आनन्दवाद
- च. वाक्

चतुर्थ अध्याय :

जगत् सम्बन्धी विविध तत्त्व

88 - 102

1. सृष्टि
2. जगत्
3. कारणवाद

पंचम अध्याय :

कालिदास के नाटकीय कथानक एवं प्रत्यभिज्ञादर्शन

103 - 107

षष्ठ अध्याय :

मोक्ष

108 - 136

1. मोक्ष का स्वरूप
2. प्रत्यभिज्ञादर्शन में मोक्ष का स्वरूप
 - क. बन्ध एवं अज्ञान
 - ख. मल
 - ग. मुक्ति
 - घ. मोक्षोपाय

परिशिष्ट

140 - 152

- क. चिदगगनचन्द्रिका में प्रत्यभिज्ञादर्शन के तत्त्व
- ख. पारिभाषिक शब्द कोश
- ग. सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

संकेत-सूची

आ.	:	आह्निक
का.	:	कारिका
ब्रसूशभा.	:	ब्रह्मसूत्रशंकर भाष्य
काशैद	:	काश्मोरशैवदर्शन
N/D SSP	:	Non- Dualism in Saiva and Sakta Philosophy.

प्रथम अध्याय

महाकवि कालिदासः व्यक्तित्व एवं कृतित्व

प्रथम अध्याय

महाकवि कालिदास का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

१. कालिदास की जन्म-तिथि :

कालिदास का जन्म स्थान, जन्म-तिथि एवं उनको कृतियों की संख्या इन सबका पता लगाने का एक मात्र साधन कालिदास की कृतियाँ ही हैं। अतः कालिदास की कृतियों से प्राप्त अन्तर्साक्ष्यों के आधार पर, एवं अन्तर्साक्ष्यों के वर्हिर्साक्ष्यों के किए गए तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर कुछ शोधपरक मत प्रस्तुत किए जाते हैं परन्तु कालिदास की जन्मतिथि एवं जन्मस्थान अभी भी शोध का विषय बनया हुआ है। विभिन्न शोधकार्यों एवं मतों से प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर भी कालिदास की प्रमाणिक जन्मतिथि ज्ञात नहीं होती।

कालिदास के काल को दो स्पष्ट सोमायें विद्वानों ने मानी है। एक तो ईसा से लगभग 150 वर्ष पूर्व और दूसरी 606 ई. पूर्व। इसके बाद कालिदास का काल मानने में विद्वानों की आपत्ति है।

कालिदास का काल ई. पूर्व प्रथम शताब्दी है। इस सम्बन्ध में विद्वानों द्वारा यह मत दिया जाता है कि— कालिदास के मालविकाग्निमित्रम् नाटक का कथानक शुंगवंशीय राजा अग्निमित्र के चरित्र से लिया गया है। अग्निमित्र मगध साम्राज्य को छीननेवाले सेनापति पुष्यमित्र का पुत्र था। इसका समय 150 ई. पूर्व विद्वानों द्वारा निर्धारित किया जाता है। तो कालिदास भी इसके समकालीन रहे होंगे। कालिदास का समय 150 ई. पूर्व से पहले निर्धारित नहीं किया जा सकता।

विद्वानों का मत है कि कालिदास सातवीं शताब्दी के बाद के नहीं हो सकते। महाकवि बाण भट्ट ¹ ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'हर्षचरित' की प्रस्तावना में कालिदास का उल्लेख किया है। बाणभट्ट कन्नौज के सम्राट हर्ष के आश्रित कवि थे। हर्ष का समय 606-647 ई. सन् ठहरता है। अतः कालिदास भी उस समय रहे होंगे।

१. निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु।

प्रोतिर्मधुर सान्द्रासु मंजरोषिवव जायते॥

एहोल ग्रामस्थ शिलालेख पर कालिदास का नाम पाया जाता है।¹ एहोल का शिलालेख पुलकेशो द्वितीय का है जिसका समय 634 ई. सन् है।

ई. पूर्व प्रथम शती तथा ईसा की सातवीं शताब्दी इन दोनों सीमाओं में कालिदास को जन्मतिथि का निर्धारण किया जाता है परन्तु कालिदास किस शताब्दी में हुए इस पर अलग-अलग विद्वानों के अलग-अलग मत हैं।

कालिदास का काल ईसा पूर्व प्रथम शती है। इस मत का प्रमुख आधार कालिदास द्वारा रचित 'विक्रमीर्वशीयम्' नाटक है। इस नाटक के नामकरण में विक्रम शब्द का प्रयोग हुआ है और इस नाटक के पात्रों के सम्भाषण में भी दो स्थानों पर विक्रम शब्द का प्रयोग हुआ है।² प्राचीन भारतीय प्रथा के अनुसार कालिदास राजा विक्रमादित्य के दरबारी कवि थे। आर. एन. करमकर,³ हरप्रसाद शास्त्री,⁴ गौरीशंकर होराचन्द्र ओझा,⁵ सो. वो. वैद्य, एम. आर. काले, बलदेव उपाध्याय, श्री शारदा रंजन राय, प्रो. शेववणेकर भारतीय विद्वान तथा विलियम जोन्स, पोर्टसन इत्यादि पाश्चात्य विद्वानोंका भी यही मत है।

यह मत उचित नहीं है। इस मत पर यह आक्षेप किया जाता है कि ई. पू. प्रथम शती में विक्रमादित्य नामक कोई राजा हुआ है इसका कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलता।

1893 और 1910 में अश्वघोष के काव्यों के प्रकाशित होने के पश्चात् कालिदास और अश्वघोष के ग्रन्थों का तुलनात्मक अध्ययन आरम्भ हो गया। कालिदास और अश्वघोष में से कौन पूर्ववर्ती है और परवर्ती इन सम्भावनाओं पर भी विचार होने

1. स विजयतां रविकीर्तोः, कविताश्रित कालिदास भारवि कीर्तिः।

2. दिष्टया महेन्द्रोपकार पर्याप्तैक विक्रमहिम्ना वर्धते भवान अनुत्तकः खलु

विक्रमालंकारः—विक्रमोर्वशीयम् अंक।

3. Kālidāsa, P. 15

4. Epigraphia Indica Vol, XII, P. 320

5. Prachina Lipimala, P. 168

लगा ।

प्रो. कावेल और कुछ पुरातत्त्व विज्ञों ने कालिदास और अश्वघोष के तुलनात्मक अध्ययन से यह निष्कर्ष निकाला कि कालिदास अपनी काव्य-कल्पना के लिए अश्वघोष के ऋणो हैं। अतः अश्वघोष के पश्चात् होने के कारण उनका समय ई.पू. प्रथम शती के बाद का है।

शारदानन्द राय, प्रो. क्षेत्रशचन्द्र चट्टोपाध्याय¹ आदि विद्वान अश्वघोष और कालिदास की रचना साम्य के आधार पर कालिदास को कुछ काव्य कल्पनाओं को अश्वघोष द्वारा लिया गया मानते हैं और कालिदास को ई. पूर्व प्रथम शती में सिद्ध करते हैं। कालिदास और अश्वघोष के कुछ वर्णन साम्य इस प्रकार हैं :

अश्वघोष बुद्धचरितम् में गवाक्ष से झांकेवाली सुन्दरियों का वर्णन इस प्रकार करते हैं :

वातायनेभ्यस्तु विनिःसृतानि परस्परोपासित कुडलानि ।

स्त्रीणां विरेजुर्मुखकजानि सक्तानि हर्म्येविषवपंड.कजानि ॥²

खिड़कियों से बाहर झांकेवाली कामनियों के मुख कमल, जिनके कर्णभूषण परस्पर रगड़ खा रहे थे, महलों के परस्पर संलग्न सरोजों के समान शोभा दे रहे थे।

कालिदास ने रघुवंश में इस प्रकार वर्णन किया है :

तासां मुखैरासवगन्ध-गर्भैर्व्याप्तान्तराः सान्द्रकुतूहलानाम्

विलोलनेत्र-भ्रमरैर्गवाक्षाः सहस्रपत्राभरणा इवासन् ॥³

अति कुतूहलपूर्ण कामनियों के मधुपान सुगन्धित और भ्रमर सदृश चंचल नेत्र युक्त मुखों के कारण महल को खिड़कियाँ कमल भूषित तो प्रतीत होती थी।

इन श्लोकों में स्त्रियों के मुख को कमल से उपमित किया गया है। अश्वघोष ने तो गवाक्ष से झांकेवाली युवतियों के मुख को उपमा कमल से दी है पर उपमासम्राट कालिदास ने इस उपमा को और विस्तृत किया है।

1. The Date of Kalidasa : Chattopadhyaya;

2. बुद्धचरितम् . 3/19

3. रघुवंशम् : 7/11

विष्णुमिराशो¹ का मत है कि इस साम्यता से हो अनुमान निकाला जाए तो कालिदास को कल्पना अश्वघोष के बाद को ठहरेगी।

अश्वघोष ने प्रागेव शब्द का प्रयोग संस्कृत के 'किमुत' अथवा अब और क्या कहना इस अर्थ में अनेक बार किया है :

अश्वघोष लिखते हैं :

स्वमाया महात्मनो विषयान् गर्हितानपि।

रतिहेतोर्बुभुजिरे प्रागेव गुणसंहितान्॥²

जब इस प्रकार के निन्दनीय विषयभोगों को बड़े-बड़े लोगों ने उपभोग लालसा से प्रेरित होकर भोगा है तब अच्छे विषय के उपभोग के विषय में कहना ही क्या है।

बौद्ध साहित्य में प्रागेव शब्द का इस अर्थ में प्रयोग अनेक स्थानों पर हुआ है। हिन्दू साहित्य में यह प्रयोग नहीं पाया जाता। अमरकोश और अन्य प्राचीन संस्कृत कोशों में प्रागेव का यह अर्थ नहीं दिया गया है। परन्तु कालिदास ऋतुसंहारम् के इस श्लोक में प्रागेव शब्द का प्रयोग किमुत अब और क्या कहना इस अर्थ में करते हैं।

कुन्दैः सविभ्रमवधुहसितावदातै -

रुधो तितान्युपवनानि मनोहरिणी।

पित्तं मुनेरपि हरन्ति निवृत्तरांग

प्रागेव राग मलिनानि मनांसि यूनाम्॥³

जब विलासिनी युवतियों के हास्य के समान शुभ्र कुंद पुष्पों से उज्ज्वल उपवन, मुनियों के विराहत मन को अपनी ओर खींचते हैं तब अनुरागी तरुणों के मन को अपनी ओर खींचे तो इसमें आश्चर्य क्या ?

'प्रागेव' शब्द के प्रयोग से यह अनुमान किया जाता है कि अश्वघोष कालिदास से पूर्ववर्ती रहे होंगे और कालिदास ने इन ग्रन्थों का अध्ययन किया होगा।

1. कालिदास, पृ. 12

2. बुद्धचरितम् : 4/81

3. ऋतुसंहारम् : 6/25

विद्वानों द्वारा इस मत का भी खण्डन किया जाता है अगर कालिदास को ईसा से पूर्व प्रथम शताब्दी में हुआ माना जाए तो हमें यह भी स्वीकार करना होगा कि उस समय संस्कृत में बौद्ध साहित्य की रचना होने लगे थी। परन्तु बौद्धों ने तो पहली शताब्दी में महायान ग्रन्थ के उत्कर्ष के बाद संस्कृत में ग्रन्थों की रचना आरम्भ की उससे पहले बौद्ध ग्रन्थ पालि में लिखे जाते थे।

कुछ और संकेत एवं प्रमाण भी हैं जो कालिदास को ई.पू. प्रथम शती का स्वीकार नहीं करते। उदाहरण के लिए कालिदास द्वारा अपनी कृतियों में शकों के आक्रमण का उल्लेख न करना शकों ने ई.पू. 35 के निकट आक्रमण किया था। यदि कालिदास उस समय होते तो वह गार्गी संहिता के युगपुराण में उल्लिखित शकों के आक्रमण से परिचित होते और उनका वर्णन करते। डॉ. भगवत् शर्मा उपाध्याय¹ कालिदास की कृतियों में वर्णित मूर्ति एवं मंदिरों के आधार पर उन्हें ईसा पूर्व प्रथम शती का नहीं मानते।

कुछ विद्वानों का मत है कालिदास का समय ईसा की तीसरी शती है। कालिदास के कुछ श्लोकों और वात्सयायन के कुछ सूत्रों में समानता पायी जाती है। वात्सयायन विवाहित स्त्री के कर्तव्यों का उल्लेख कुछ इस प्रकार करते हैं :

श्वश्रुश्वशुरपरिचर्या तत्पारतंत्र्यमनुन्तरवादिता ।

भोगेष्टवनुत्सेकः । परिजने दाक्षिण्यम् ।

नायकापचारेषु किञ्चित्कलुषिता नात्यर्थं निवेदत् ।²

इन प्रकीर्ण विचारों को कालिदास ने संगठित रूप में अभिज्ञानशाकुन्तलम् के चतुर्थ अंक में कण्व के द्वारा शकुन्तला को दिए गए भावपूर्ण उपदेश के रूप में इस प्रकार लिखा है :

शृणुष्वस्व गुरुनृकुरु प्रियसरस्वती वृत्तिं सपत्नी जने

भर्तृर्विप्रकृताऽपि रोष-णतया मा स्म प्रतीपं गमः ।

भूयिष्ठं भव दक्षिणापरिजने भोगेष्टवनुत्सेकिनो

यान्त्येवं गृहिणोपदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः ॥³

1. कालिदास और उनका युग, पृ. 44-46

2. कामसूत्र

3. अभिज्ञानशाकुन्तलम् : 4/17

इस तथ्य को नकारा नहीं जा सकता कि मूल कल्पना वात्स्यायन की ही रही होगी। कालिदास अवश्य ही वात्स्यायन के पश्चादवर्ती रहे होंगे। वात्स्यायन का समय विद्वान ईसा की तीसरी शती में स्वीकार करते हैं।

ज्योतिषशास्त्री श्री द.वे. केतकर का भी मत है कि कालिदास 280 के आसपास हुए थे। इस मत के समर्थन में यह ज्योतिष विषयक उल्लेख दिये जाते हैं।

कालिदास ने रघुवंशम् के इस श्लोक में घर्मआजगाम अर्थात् धूप काल आ गया इन शब्दों में मई महोने में दो तृतीयांश व्यतीत हुए। उत्तरायन का निर्देश किया है :

यथास्य रत्नग्रथितोन्तरीयमेकान्तपाण्डुस्तनलम्बिहारम्।

निःशवासहायाशुकमाजगाम घर्मः प्रियावेषमिवोपदेष्टुम् ॥¹

इसके अनन्तर इस श्लोक में कालिदास ने स्वकालीन दक्षिणायन का निश्चित स्थान भी बताया है :

अगस्त्यचिह्नादयनात्समोषं दिगुत्तरा भास्वति संविष्टते।

आनन्दशीतमिव वाष्पवृष्टिं हिमस्रुतिं हैमवतीं तसर्ज ॥²

दक्षिणायन से सूर्य के अपने पास लौटने पर उत्तर दिशा से आनन्द से शीतल अश्रुओं के समान हिमालय के हिम प्रवाह को छोड़ दिया। इस श्लोक में अगस्त्य द्वारा तारा को दक्षिणायन का चिन्ह कहा गया है। सूर्य सिद्धान्त और वराहमिहिर के पंच सिद्धान्तिका में अगस्त्य के अंश अश्विनी नक्षत्र के आरम्भ से 90 हैं, ऐसा कहा जाता है। दक्षिणायन स्थल 90 अंशों पर होने का काल ई.सं. 280 वर्ष होना चाहिए। अतः श्री केतकर का अनुमान है कि कालिदास ईसा के तीसरी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुए होंगे।

मिराशी³ के अनुसार कालिदास का काल ईसा की तीसरी शताब्दी भी नहीं माना जा सकता। कालिदास द्वारा प्रयोग किए गए अगस्त्यचिह्न अपनात इन शब्दों

1. रघुवंशम् : 16/43

2. रघुवंशम् : 16/66

3. कालिदास : पृ. 19-20

का अर्थ दक्षिण दिशा से यही विवक्षित होगा। संस्कृत टीकाकार भी यही अर्थ करते हैं। अगस्त्य के अंशों पर हुए दक्षिणायन से इतना तान्त्रिक अर्थ कालिदास कहना चाहते थे इसमें संशय है।

कालिदास की कृतियों में वर्णित सम्पन्नशाली राज्यों की स्थिति के आधार पर विद्वानों का यह अनुमान है कि कालिदास जिस राजसी वैभव का वर्णन करते हैं वह गुप्तकालीन साम्राज्य में पाया जाता है। अतः कालिदास का आविर्भावकाल ईसा की चतुर्थ शती उत्तरार्ध अथवा पंचमशती का पूर्वार्ध है। इस मत की पुष्टि हेतु यह साक्ष्य दिए जाते हैं :

कुमार गुप्त द्वितीय के शासन काल में वत्सभट्टों द्वारा रचित मन्दसौर अभिलेख को प्रशस्ति में ऋतुसंहारम् तथा मेघदूतम् के कुछ श्लोकों की छाया मिलती है। यह लेख डॉ. फ्लोट¹ ने अपनी पुस्तक में प्रकाशित किया है। कालिदास मेघदूतम् में लिखते हैं :

विद्युद्वन्तः ललितवनिता सेन्द्रघापं सचित्राः

संगीताय प्रहृतमुरजाः स्निग्धगम्भीरघोषम्।

अन्तस्तोयं मणिमयभुवस्तुंगमभ्रलिहाशाः

प्रसादास्त्वां तुलयितुमतां यत्र तैस्तैर्विशिषैः॥²

वत्सभट्ट ने लिखा है :

चलत्पताकान्यबलासनाथन्यत्यर्थशुक्लान्यधिकोन्नतानि।

तडिल्लताचित्रसिताभ्रकूटतुल्योपमानानि गृहाणि यत्र॥³

इन दोनों पद्यों में उत्तुंग भवनों एवं मेघों की तुलना में समानता है।

वत्सभट्टों के शिलालेख पर ऋतुसंहारम् के श्लोकों की भी दाया है। कालिदास ऋतुसंहारम् में लिखते हैं :

निरुद्धवातायनमन्दिरोदरं हुताशनो भानुमतोगमस्तयः।

गुरुणि वासांस्यबलाः सयौवना प्रयान्तिकालोऽत्रं जनस्यसेव्यताम्॥⁴

1. Dr. Fleet, Gupta Inscription. No 18

2. मेघदूतम् : पूर्व, 66

3. वत्सभट्टों : श्लोक 10

4. ऋतुसंहारम् : 5/2

तथा :

न चन्दनं चास्मरौ चिशीतलं न हर्म्यपृष्ठं शरदिन्दुनिर्मलम् ।

न वायवः सान्द्रतुषारशीतला जनस्यचित्तं रम्यन्ति साम्प्रतम् ॥ ¹

वत्सभदटो लिखते है :

~~इरामासनाथ भवनोदर भास्करांशुवहिनप्रताप सुभगेजललोचनीने ।~~

~~चन्द्रांशुहर्म्यतल चन्दन ताल वृत्त हारोपभोगरहिते हिमदग्धपदमे ॥ ²~~

वत्सभदटो के इस श्लोक पर ऋतुसंहारम् के श्लोकों का प्रतिबिम्ब साफ झलक रहा है। रघु को दिग्विजय के वर्णन के आधार पर कालिदास का समय पांचवीं शताब्दी है ऐसा कहा जाता है। रघुवंश में रघु को दिग्विजय में दक्षिण को सीमार्ये समुद्रगुप्त की विजय से तथा उत्तर पश्चिम सीमान्त को विजय चन्द्रगुप्त द्वितीय की विजय सीमाओं में साम्य रखता है। ³ कालिदास ने रघुवंशम् ⁴ में लिखा है कि रघु ने वंध्युनदी के किनारे पर हूणों को पराजित किया था :

विगोताध्वजगास्तस्य वंद्युतोर विधेष्टनैः ।

दुधुवर्वाजिनः स्कन्धांल्लग्नकुडु-कुमकेसरान् ॥ ⁵

तत्र हूणावरोधनां भर्तृषु, व्यक्तविक्रमम् ।

कपोल पाटनादेशि बभूव रघुधेष्टितम् ॥ ⁶

ऐतिहासिक साक्ष्यों से पता चलता है कि ईरानी नरेश बहरामगौर से पराजित होकर हूण लोग 424 ई. के लगभग वंध्यु नदी की घाटी में बस गए थे। महरौली स्तम्भ के अभिलेख से ज्ञात होता है कि चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने वंग विजय के पश्चात् पंजाब

1. ऋतुसंहारम् : 5/3

2. वत्सभदटो शिलालेख, श्लोक 3।

3. वत्सभदटो शिलालेख : श्लोक 3।

4. महाकवि कालिदास : पृ. 10

5. रघुवंशम् : 4/67

6. रघुवंशम् : 4/68

को सातों नदियों को पार करके हूणों को वंशु नदी की घाटी में विजित किया था।

हूणों ने 450 ई.स. के लगभग अपना राज्य स्थापित कर भारतवर्ष पर चढ़ाई की। यह आक्रमण कुमारगुप्त के अन्तिम समय में हुआ था और युवराज स्कन्द गुप्त ने बड़ी वीरता से इन हूणों का मुकाबला किया था जूनागढ़ के समीप गिरनार के ई.सन् 445-456 के शिलालेख से सिद्ध हो चुका है कि यह विजय ऐतिहासिक है।

रघुवंशम् में कालिदास ने हूणों के ऑक्सस नदी पर होने का वर्णन किया है। सम्भव है यह ग्रन्थ 455-56 के मध्य लिखा गया हो। प्रो. के. बी. पाठक¹ का भी यही मत है कि कालिदास का काल पाँचवीं शताब्दी का मध्य है। डॉ. बुद्ध प्रकाश² जिन्होंने कालिदास और हूणों का विस्तृत अध्ययन किया है उनका मत है कि चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमाद्वितीय के पश्चिमो विजय अभियान का हो वर्णन कालिदास ने रघु को पश्चिमोत्तरो विजय यात्रा के रूप में किया है। अतः विश्वासपूर्वक कहा जा सकता है कि कालिदास का आविर्भावकाल 390 -395 के आस-पास हो रहा होगा।

इस मत के खण्डनकर्ता विद्वानों का मत है कि पाँचवीं शताब्दी से पहले भारतीयों को हूणों का ज्ञान ही नहीं था यह अनुचित है। पारसियों के ग्रन्थ अवेस्ता और हिन्दुओं के ग्रन्थ महाभारत में हूणों का उल्लेख है। ईसा की तीसरी शताब्दी में लिखित ग्रन्थ ललित विस्तर में, बुद्ध ने अपने बाल्यकाल में जिन लिपियों को सीखा था उनकी नामावली में हूण लिपियों का भी उल्लेख है।

अतः कालिदास हूणों के विषय में जानते ही होंगे। यह आवश्यक नहीं कि उन्होंने रघुवंशम् महाकाव्य पाँचवीं शताब्दी में लिखा हो। कालिदास के गुप्तकालीन होने के कुछ साहित्य और सांस्कृतिक प्रमाण भी दिए जाते हैं।

कालिदास को कृतियों में वर्णित मूर्तिकला उन्हें गुप्तकालीन कला से प्रभावित अथवा गुप्तकालीन हो सिद्ध करती है। कालिदास ने गंगा-यमुना की जिन-चमरधारिणी³ मूर्तियों का वर्णन किया है उनका निर्माण कुषाणकाल के अन्त में तथा गुप्त काल के

1. K.B. Pathak, Introduction, P.X

2. Studies in Indian history and civilization, P.329

3. मूर्ते च गङ्गा यमुने तदानीं स्यामरे देवमसेविषाताम्

समुद्रगारूपविषयैऽपि सहस्रपाते इव लक्ष्यमाणो ॥

आरम्भ में हुआ था। समुद्रगुप्त के सिक्कों पर भी ऐसी ही मूर्तियाँ बनी हुई हैं।

कुषाणकाल में मयूरों को मूर्तियों के साथ नहीं बनाया जाता था अर्थात् मयूरहीन मूर्तियाँ प्राप्त होती हैं। किन्तु गुप्तकाल में मयूरारूढ़ मूर्तियाँ पाई जाती हैं जैसी मथुरासंग्रहालय में गुप्तकालीन, कार्तिकेय को मयूरारूढ़ मूर्ति है।¹ कालिदास ने श्री रघुवंशम् में मयूरारूढ़ मूर्ति का वर्णन किया है।

पराधर्यवर्णास्तिरणोपपन्नमासे दिवान रत्नवदासनं तः।

भूयिष्ठमासी दुपमेयकान्तिर्मयूरपृष्ठाश्रयिणा गुहेन॥²

राजशेखर ने काव्यमोमांसा में कालिदास का उल्लेख किया है :

योज्जयिन्या काव्यकार परोक्षा इह कालिदास मेण्ठावत्रामरस्य सूरभारवयः।

हरिश्चन्द्र—चन्द्रगुप्तौ परोक्षिणाविह विशालायाम्॥³

कालिदास ने मेघदूतम् में रामगिरि पर्वत का वर्णन किया है। यह तो निश्चित है कि कालिदास इस स्थान को जानते थे। चन्द्रगुप्त को पुत्री प्रभावती गुप्त का भी इस पर्वत के आस-पास किसी जगह से सम्बन्ध प्रतीत होता है। अमरावती के अद्वपुर स्थान पर प्रभावो गुप्त का एक ताम्रपत्र प्राप्त हुआ है जिस पर लिखा है—

रामगिरिस्वामिन मूलात् तथा तिथि भी वही है जो यक्ष को शापान्त तिथि से सम्बन्धित है⁴ कार्तिक शुक्ल पक्ष द्वादशी ॥हरि प्रबोधिनी को पारणा के दिन॥

चन्द्रबलो पाण्डेय⁶ कालिदास को अप्रतिरथ शब्द प्रयोग के आधार पर भी गुप्तकालीन बताते हैं। अप्रतिरथ शब्द गुप्तकालीन विभूतियों को प्रिय था। समुद्रगुप्त

1. वी.एस.अग्रवाल, ए हेण्डबुक ऑफ दि स्कल्चर इन दि म्यूज़ियम ऑफ आरक्योलोजी, मथुरा, 1939 फिगर 40,

द्रष्टव्य :

V.S.Agarwal's Article. 'Art Evidence in Kalidasa'

Journal of the U.P. historical society, Vol. XXII, Parts 1-2 P.P. 81 and his book, Gupta Art. 1947

2. रघुवंशम् : 6/4

3. काव्यमोमांसा, अध्याय 0, पृ. 55

4. मेघदूतम्: पूर्व : 1

5. मेघदूतम् उत्तरमेव : 47

6. कालिदास : पृ. 24

को प्रयागप्रशस्ति में यही प्रयोग मिलता है— 'पृथिव्यमाप्रतिरथस्याश्वमेहीनः' गुप्तकालीन विभूतियों को यह शब्द प्रिय होने से कालिदास को भी प्रिय था और उन्होंने अभिज्ञानशाकुन्तलम् में इसका प्रयोग भी किया है :

रथेनानुद्धातस्तिमितगतिना तोर्णजलधिः

पुरा सप्तद्वीपां जयति वसुधामप्रतिरथः ।

इहायां स्त्वनानां प्रसभदमनात्मसर्वदमनः

पुनर्यास्य त्याख्यां भरतञ्जति लोकस्य भरणात् ॥ ¹

कतिपय विद्वान् कालिदास का गुप्तकालीन होना स्वीकार नहीं करते। उनके अनुसार कालिदास का समय ईसा की छठी शताब्दी है। इस मत का प्रमुख आधार ह्वेनसांग का भारत वर्णन है। ह्वेनसांग ने 629 ई. से 645 ई. तक भारत में प्रवास किया था।

वराहमिहिर के ग्रन्थ से प्राप्त समानताओं के आधार पर भी कालिदास का समय छठी शताब्दी माना जाता है। वराहमिहिर ज्योतिष के प्रकाण्ड पण्डित थे। इन्होंने अघनबिन्दु का निश्चय किया उनके समय में वर्षाश्रितु का आरम्भ आषाढ़ मास से माना जाता था। इसका उल्लेख वराहमिहिर ने अपने ग्रन्थ में किया है। कालिदास ने भी मेघदूतम् ² में वर्षाश्रितु का आरम्भ आषाढ़ मास के प्रथम दिवस से माना है।

इसके अतिरिक्त भी कालिदास ने वराहमिहिर के ग्रन्थों से कई ज्योतिषविषयक कल्पनाएँ ली हैं :

'वराहमिहिर के भूछायां स्वग्रहणे भास्करमर्कग्रे प्राविशतीन्दु' ³ के केन्द्र भाव को लेकर कालिदास इस प्रकार लिखते हैं :

अवैमिधैनामघेति किन्तु लोकपवादो बलवान् मते मे ।

छाया हि भूमेः राशिनो मलत्वेनारोपिता शुद्धिगतः प्रजाभिः ॥ ⁴

1. अभिज्ञानशाकुन्तलम् : 4/20 तथा 7/33

2. मेघदूतम् : सूक्तमेव 2

3. बृहत्संहिता : राहुचार

4. रघुवंशम् : 14/40

भूमि को छाया के कारण ग्रहण लगता है ऐसा कालिदास और वराहमिहिर दोनों लिखते हैं।

उस प्रकार को एक और समानता पाई जाती है।

वराहमिहिर लिखते हैं :

सलिलमये शशिनि रवेर्दोधितयो मूर्छितास्तमो बाल चन्द्रमाः।¹

कालिदास लिखते हैं :

पितु प्रयत्नात् स समग्रसंपदः शुभैः शरीरावयवेदिने दिने।

पुपोष वृद्धिं हरिदश्वदो धितेरनुप्रवेशादिव बाल चन्द्रमाः॥²

वराहमिहिर और कालिदास दोनों ने यह लिखा है कि चन्द्रमा सूर्य की किरणों से प्रकाशित होता है। परन्तु यह तो एक प्राचीन कल्पना है। वराहमिहिर का समय छठी शताब्दी है। अतः इस साम्यता के आधार पर कालिदास का समय भी छठी शताब्दी माना जाता है। यह मत भी उचित नहीं है।

मेघदूतम् में 'आषाढस्यप्रथमं दिवसे,' ऐसा पाठ भी मिलता है। इससे वर्षाऋतु का आरम्भ श्रावण के प्रारम्भ में होता था। यह अर्थ निकलता है। रघुवंशम्³ के दो श्लोकों से भी यही सूचित होता है इससे तो कालिदास का काल वराहमिहिर से भी पहले ठहरता है।

राशि शब्द के प्रयोग के आधार पर भी कालिदास को वराहमिहिर के समकालीन ठहराया जाता है। वराहमिहिर का समय ईसा की छठी शताब्दी माना जाता है। वराहमिहिर ने राशि शब्द का प्रयोग किया है और कालिदास ने भी राशि शब्द का प्रयोग किया है :

विद्वः : वयस्यः दिष्ट्या अनेनाविनयेन अप्रसन्ना गर्तेषा तद् वयं शोघ्रमपक्रमामः

यावदङ्गरको राशिमिवानुवृत्तं प्रतिगमनं करोति।.

1. बृहत्संहिता : चन्द्रसार

2. रघुवंशम् : 3/22

3. रघुवंशम् : 12/29, 18/6

4. मालविकाग्निमित्रम्, अंक 3, पृ. 299

राशि शब्द प्रयोग के इस प्रमाण से कालिदास को वराहमिहिर का समकालीन मानना उचित नहीं है। राशि शब्द का प्रयोग एक नवीन प्रयोग नहीं है। यह शब्द प्रयोग छान्दोग्योपनिषद् में भी मिलता है। ईसा पूर्व आठवीं शताब्दी में हुए भास्कराचार्य ने निरुक्त ¹ में राशि शब्द प्रयोग किया है। डॉ. करमरकर ² का भी यही मत है कि राशि शब्द के प्रयोग की प्राचीनता के सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता।

ज्योतिर्विदाभरण ग्रन्थ के आधार पर भी कालिदास का समय ईसा की छठी शताब्दी माना जाता है। ज्योतिर्विदाभरण ग्रन्थ के बारहवें अध्याय में यह आया है कि यह ग्रन्थ शकारि विक्रमादित्य के आश्रित कवि कालिदास का बनाया हुआ है। यह कवि कालिदास विक्रमादित्य के नवरत्नों में से था ³। भारतीय एवं पाश्चात्य प्रायः अधिकतर विद्वान इस मत से सहमत हैं कि कालिदास विक्रमादित्य उपाधिधारी राजा के आश्रित कवि थे। विक्रमादित्य हो शकों को परास्त कर शकारि उपाधि से अलंकृत हुए थे।

अभिनन्द रचित रामचरित के श्लोक से भी यह ज्ञात होता है कि कालिदास

1. अथाप्यस्यैको रश्मिश्चन्द्रमसं प्रति दीप्यते तदेतेनोपेक्षित व्यम्।

आदित्योता स्य दीप्तिर्भवति।

निरुक्त : अध्याय 2, पाद 2, खण्ड-6

2. Kalidasa refers to Rasis . It is usually held that it was Varahmihira (6th Century A.D.) Who made use of Rasis in earlier literature it is found in the present circumstances nothing can be said for certain on his point--- Mr.A.I.Karandikar of poona informs me that he has found a reference to 'Rashi' in the Rgveda, and the 'Rashi' was untenable statement."

Kalidasa, R.D. Karmakar, P.15

3. धन्वन्तरिक्षपणकाकेर सिंहशङ्कुवेतल भद्रघटपर्कालिदासाः।

ख्यातो वराहमिहिरौ नृपतेः सभायांरत्नानि वै वररुचिर्नवविक्रमस्य॥

को कृतियों को शकार या शकारि राजा ने प्रसिद्धि प्रदान की थी :

हालेनोत्तमपूजया कपिवृषः श्रो पालितो ललितः

ख्यातिं कामार्घ्यं कालिदास कृतयो नोताः शकारातिना ॥¹

ज्योतिर्विदाभरणा ग्रन्थ और कालिदास के काव्यों में अनेक स्थानों पर कल्पना साम्य पाया जाता है।²

यह मत भी उचित नहीं है ज्योतिर्विदाभरणा ग्रन्थ का काल छठी शताब्दी हो सकता है, परन्तु इसके रचयिता रघुवंशकार कालिदास ही है। यह प्रमाणित नहीं होता क्योंकि राजशेखर ने तीन कालिदासों का उल्लेख किया है :

एकोऽपि जोयते हन्त कालिदासी न केनचित्।

शृंगारे ललितोदगारे कालिदासत्रयो किमु ॥

कालिदास को जन्म तिथि के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न विचार प्रकट किए हैं। अनुमानों को प्रमाण कहना उचित नहीं है। जिन तथ्यों के आधार पर कालिदास को जन्म तिथि पर विचार किया जाता है वह प्रबल सम्भावनाओं को जन्म देकर अनिश्चिततात्मकता को परिधि में घूमते रहते हैं। अभी तक ऐसे तथ्यों का अभाव है जो प्रामाणिक निष्कर्षों को प्रस्तुत करके तद्विरुद्ध स्मृत सम्भावनाओं का उन्मूलन कर दें।

•2. कालिदास का जन्म स्थान :

महाकविकालिदास को जन्म तिथि की भाँति जन्म स्थान के सम्बन्ध में भी मतों एवं अनुमानों की परम्परा चली आ रही है। यह तो निश्चित है कि कालिदास ने भारतभूमि पर जन्म लिया है। भारतीयता का भाव रखनेवालों के लिए यह गौरव का विषय है। पर जब अन्वेषणशील बुद्धि ने प्रान्तीयता को दृष्टि से कालिदास के जन्म स्थान को सिद्ध करना चाहा तो इन मतों का उदय हुआ।

महाकवि कालिदास का जन्म स्थान बङ्गाल है। इसको पुष्टि हेतु यह मत प्रस्तुत

1. कवि अभिनन्द कृत रामचरित, 46/36

2. ज्योतिर्विदाभरणा : 4/85

किए जाते हैं— कालिदास के नाम से हो ज्ञात होता है कि वह बंगाली थे। कालिदेवी बंगाल की प्रमुख देवी है। आज भी वहाँ कालिपूजा का उत्सव बहुत धूमधाम से मनाया जाता है। बंगाल में लोग श्रद्धापूर्वक कालिदास नाम धारण करते हैं और माता-पिता द्वारा भी भक्तिभाव से अपनी सन्तानों का नाम कालिदास रखा जाता है।

कालिदास के बंगाली होने के सम्बन्ध में यह मत भी प्रस्तुत किया जाता है कि उन्होंने मेघदूतम् खण्डकाव्य में आषाढस्य प्रथमदिवसे पद प्रयोग किया है। बंगाल में सौर मास की गणना का प्रचलन है। महोनों के चन्द्रमास के निदर्शन शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष नाम प्रचलित नहीं है और न ही महोने के दो पक्ष माने जाते हैं। कालिदास ने भी बंगाली होने के कारण आषाढस्य प्रथमदिवसे इस पद का प्रयोग किया है।

इन मतों के आधार पर कालिदास का बंगाली होना सिद्ध नहीं होता। कवि का नाम कालिदास होने से वह बंगाली नहीं हो सकते। सम्भव है यह नाम उनके माता पिता ने कालिदेवी के भक्त होने के कारण श्रद्धावशीभूत रखा हो, कालिदास तो अपनी कृतियों के माध्यम से कालिदेवी के भक्त प्रतीत नहीं होते वह तो शिव भक्त हैं सर्वत्र वह शिव की महिमा का ही वर्णन करते हैं। कुमारसम्भव² नवें सर्ग में कालिदेवी का उल्लेख हुआ किन्तु विद्वानों का मत है कि 9वां सर्ग कालिदास द्वारा रचित नहीं है और एक अन्य ग्रन्थ 'चिदगगनचन्द्रिका' में भी कालिस्तुति है पर यह ग्रन्थ भी कालिदास का है या नहीं इस पर भी विद्वानों में मतैक्य का अभाव है।

आषाढस्य प्रथमदिवसे पद काव्य की दृष्टि से कवि का ललित प्रयोग है। इसमें ज्योतिषविषयक बुद्धि विलास खोजना उचित नहीं है। आषाढस्य प्रथम दिवसे की उद्भावना के आधार पर उनका बंगाल में जन्म लेना सिद्ध नहीं होता।

चन्द्राबली पाण्डेय तथा पिटर्सन आदि विद्वानों का विचार है कि कालिदास का जन्म विदर्भ देश में हुआ था। उन्हें विदर्भ बहुत प्रिय था ऐसा उनको कृतियों से ज्ञात

1. मेघदूतम् : पूर्वमेव : 2

2. कण्ठस्थलीं लोलकपालमाला दंष्ट्राकरालाननमश्चतुत्यत्।

प्रोतेन तेन प्रभुणा नियुक्ता कालो कलत्रस्य मुदे प्रियस्य॥

होता है। उनके नाटक मालविकाग्निमित्रम् को नायिका विदर्भ राजकुमारी थी। मेघदूतम् का यक्ष भी विदर्भस्य रामगिरि का हो प्रावसो था। रघुवंशम् में भी विदर्भ राजकन्या इन्दुमती के स्वयंवर का वर्णन है। कालिदास को वैदर्भीरौति बहुत प्रिय थी। चन्द्रबलो पाण्डेय के अनुसार कालिदास को कृतियों में उत्तरकौशल आदि पदों के प्रयोग से दक्षिण का हो होने का संकेत प्राप्त होता है।

यह भी उचित नहीं है। उत्तरकौशल पद के प्रयोग के आधार पर उन्हें दक्षिण का जोव माना जा सकता है, पर यह विदर्भवासी हो ये यह सिद्ध नहीं होता। वह विदर्भ का वर्णन करते हैं। विदर्भ के किसी भाग विशेष का नहीं। इस प्रकार तो कालिदास विदिशा का वर्णन करते हैं। मेघदूतम् में विदिशा का वर्णन करने से कुछ विद्वान् उनका जन्म स्थान विदिशा मानते हैं। कालिदास ने अपनी कृतियों में विदिशा को प्राकृतिक सम्पदा जैसे-नदियों, पर्वतों का उल्लेख किया है। प्रो. परांजये ने विदिशा को कालिदास का निवास स्थान बताया है तथा हरप्रसाद शास्त्री भी कालिदास को विदिशा से सम्बन्धित मानते हैं। परन्तु विदिशा को अपेक्षा तो कालिदास ने उज्जयिनी नगरों का अधिक तल्लोनीयता से वर्णन करते हैं। विदिशा नगरों का वर्णन तो वह दो तीन श्लोकों में ही करते हैं परन्तु उज्जयिनी के प्रति तो वह एक प्रकार से समर्पित प्रतीत होते हैं। विद्वानों का मत है कि कालिदास का जन्म स्थान उज्जयिनी है। यक्ष मेघ से कहता है कि यद्यपि उसको उत्तर जाते हुए कुछ ठेढ़ा चलना पड़ेगा किन्तु फिर भी वह उज्जयिनी के दर्शन अवश्य करेंगे।

वक्रः पन्था यदिरुभवतः प्रस्थितस्योत्तराशां

सौधोत्सङ्गप्रणयविमुखो मा स्म भूरज्जयिन्याः।

विष्टुद्धामस्फुरितचकितैस्तत्र पौराड्-गनानां

लोलापाड्-गौर्यदि न रमस्ते लोचनैर्वाञ्छतोऽसि॥¹

अवश्य ही कालिदास का उज्जयिनी से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा होगा तभी तो वह मेघ से उज्जयिनी के दर्शन को प्रार्थना करता है और उसे स्वर्ग का ही एक अंश

बताता है :

प्राच्यावन्तोनुदयनकथाको विदग्रामवृद्धान्
पूर्वोदिष्टामनुसर पुरों श्री विशालां विशालम् ।
स्वल्पभूते सुचरिफले स्वर्गिणां गां गतानाम् ।
शेषैः पुण्यैर्हतमिव दिवः कान्तिमतखण्डमेकम् ॥ ¹

कालिदास उज्जयिनो का प्राकृतिक वर्णन भी करते हैं :

दोर्घोर्कुर्वन् पट्ट मदकलं कूजितं सारसानाम्
प्रत्यूषेषु स्फटिकमलामोदमैत्रोकषायः ।
यत्र स्त्रोणां हरति मुरतग्लानिमद्. गानुकूलः
शिष्टावातः प्रियतम इव प्रार्थनाचाटुकारः ॥ ²

उज्जयिनो हो कालिदास का जन्म स्थान है यह मत भी प्रामाणिकता की परिधि से बाहर है। कुछ विचारकों का मत है कि कालिदास का जन्म स्थान काश्मीर है। कालिदास को प्रकृति का सुकुमार कवि कहा जाता है। काश्मीर की प्राकृतिक सुषमा के कारण धरती का स्वर्ग कहा जाता है। यदि हम कालिदास की कृतियों में प्राकृतिक सुषमा इनका साम्य दर्शाएँ तो कालिदास की सम्पूर्ण काव्यराशि को उदधृत करना पड़ेगा।

लक्ष्मोधर कल्ला काश्मीर को महाकवि का जन्म स्थान बताते हैं। इसकी पुष्टि हेतु मत कुछ इस प्रकार प्रस्तुत किए गए हैं। कालिदास का जन्म स्थान मयग्राम है, क्योंकि मेघदूतम् में वर्णित यक्ष के भवन का वर्णन हरमुकुट पर्वत की तलहटी में बने हुए मयग्राम अथवा मणिग्राम से बहुत मिलता है। यह ग्राम यक्षों का ग्राम रहा होगा। ११वीं शताब्दी तक यह मयग्राम इतिहास में प्रसिद्ध था। मयग्राम काश्मीर में है अतः कालिदास भी काश्मीर के होंगे। कालिदास द्वारा अपने ग्रन्थों में हिमालय पर्वत का वर्णन बहुत सूक्ष्म दृष्टि से किया गया है। कवि कुमारसम्भवम् महाकाव्य का आरम्भ ही हिमालय की महिमा से करते हैं :

अस्त्युत्तरस्यांदिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः ।
पूर्वपरौतोयनिन्धी वगाह्य स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः ॥ ³

1. मेघदूतम् : पूर्वमिष , 31

2. वही, 32

3. कुमारसम्भवम् : ॥

कवि ने कुमार सम्भवम् में हिमालय का विशद वर्णन किया है।¹

हिमालय का यह वर्णन कालिदास के पौराणिक ज्ञान के साथ-साथ उनके भौगोलिक ज्ञान का भी प्रदर्शन करता है।

मेघदूतम् में वर्णित यक्ष को निवास भूमि अलका नगरी भी हिमालय पर थी। विक्रमोर्वशीयम् में पुरुरवा और उर्वशी तथा कुमारसम्भवम् में शिव और पार्वती दोनों युग्मों को प्रणयलीला का स्थान गन्धमादन पर्वत है। जो काश्मीर में स्थित है। वशिष्ठ ऋषि, मारीच ऋषि, कण्वऋषि इन सभी ऋषियों के आश्रम कालिदास ने इसी पर्वत श्रेष्ठ हिमालय पर बताये हैं। इन सभी उल्लेखों से कवि के हिमालय प्रेम की प्रभूत व्यंजना होती है। कालिदास की कृतियों में काश्मीर की लोककथाओं और रीतिरिवाजों की छाप दिखाई पड़ती है।

रघुवंशम् में कालिदास ने राजा दिलीप द्वारा सेवित वशिष्ठ ऋषि की धेनु पर आक्रमण करनेवाले सिंह को भूतेश्वरपार्श्ववर्ती कहा है :

अथान्धकारं गिरिगह्वराणां दंष्ट्रामयपूरवैः शकालानि कुर्वन्।

भूपः स भूतेश्वरपार्श्ववर्ती किंचिद् विहस्यार्थपतिं बभाषे॥²

रघुवंश महाकाव्यम् में गाय के ऊपर झपटनेवाला सिंह अपने को निकुम्भ का मित्र बताता है :

कैलासगोरं वृषमारुरुक्षोः पादार्पणानुग्रहपूत पृष्ठम्।

अवेहि मां किंकरमष्टमूर्तेः कृम्भोदरं नाम निकुम्भमित्रम्॥³

काश्मीर के नोलमतपुराण में यह कथा मिलती है कि कुबेर ने दृष्ट पिशाचों के निष्कासनार्थ निकुम्भ को नियुक्त किया था और कालिदास शंकर द्वारा हिंस्र पशुओं के निवारणार्थ नियुक्त किया हुआ बताते हैं।

कालिदास की कृतियों में काश्मीर के रीतिरिवाजों की झलक भी मिलती है। काश्मीर में यह रिवाज है कि विवाह के समय सास या अन्य कोई सौभाग्यवती नारी

1. कुमारसम्भवम् : 1-19

2. रघुवंशम् : 2/46

3. रघुवंशम् : 2/35

वर के गले में माला डालती है। इन्द्रमती स्वयंवर में भी इन्द्रमती स्वयं अज के गले में माला न डालकर अपनी उपमाता मुनन्दा से डलवाती है।

सा चूर्णगौरं रघुनन्दनस्य धात्रोकराभ्यां करभोषभोरुः ।

आसंजयामास यथाप्रदेशं कण्ठे गुणं मूर्तिमिवानुरागम् ॥ ¹

काश्मीर प्रदेश में धोवर का धन्या निन्दनोप माता जाता है। शाकुन्तलम् के धोवर वाले प्रसंग में इस धन्ये के प्रति निन्दोप भाव प्रदर्शित किया गया है—श्या०
॥ विहस्य ॥ विमुद्ग दाणिं आजोवो । ²

मेघदूतम् में पुष्प, नृत्य, गीत, सुरापान आदि का जो वर्णन कालिदास ने किया है वह काश्मीरी संस्कृति के अनुरूप है। क्योंकि काश्मीर का ऐसा ही वर्णन काश्मीरी कवि कल्हण को राजतरंगिणी और बिल्हण के विक्रमांकदेवचरितम् आदि ग्रन्थों में मिलता है।

कालिदास शैव थे, शैव होने के कारण उनका जीवन दर्शन काश्मीरी शैववाद से बहुत प्रभावित है। कालिदास काश्मीर के प्रत्याभिज्ञादर्शन को माननेवाले थे।

महाकवि को प्रायः सभी नाट्यकृतियों में काश्मीर के प्रत्यभिज्ञादर्शन का प्रतिबिम्ब दृष्टिगत होता है। अभिज्ञान शाकुन्तलम् में अंगुलीपक, विक्रमोर्वशीयम् में संगमनोयमणि, मालविकाग्निमित्रम् में मालविका के सिद्धादेश से अज्ञातवास को योजना इसी तथ्य को पुष्ट करती है। इसके अतिरिक्त कवि काश्मीरी शैववाद से भी कम प्रभावित नहीं है। जिसको कल्पना सभी नाटकों में मुखरित है। ³

प्रत्यभिज्ञादर्शन को मान्यताओं का स्रोत आगमसाहित्य है। आगमशास्त्र अधिकांश रूप से शिव और पार्वती के संवाद रूप में है, जिसमें शिव पार्वती को आगम के सिद्धांत बताते हैं। पार्वती को यहाँ प्रिये कहकर सम्बोधित किया गया है।

कालिदास को कृति ऋतुसंहारम् पर इस आगम शैली का स्पष्ट प्रभाव है। इसमें

1. रघुवंशम् : 6/83

2. अभिज्ञानशाकुन्तलम् : अंक-6, पृ. 147

3. कालिदास, कैलाशनाथ द्विवेदी, पृ. 14

भी प्रिय सम्बोधन प्रयोग किया गया है। उदाहरण के लिए :

प्रचण्ड सूर्य स्पृहणीय चन्द्रमाः सदावगाह्यतवारिसञ्चयः ।

दिनान्तर रम्योऽभ्युपशान्त मन्मथो निदाघकालो समुपागतः प्रिये ॥¹

ऋतुसंहारम् में प्रकृति चित्रण के माध्यम से कालिदास ने शिव के वैभव का वर्णन किया है। मिराशी² के अनुसार कालिदास ने तत्त्वज्ञान का विचार करते समय क्या वह शैवमत के अनुयायी थे। इस प्रश्न का हम विमर्श करेंगे। यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि यह मत शंकराचार्य के केवलाद्वैत से मिलता जुलता है। अतः उनके पीछे काश्मीर में इस मत का प्रचार हुआ होगा। इसके सिवा कालिदास के ग्रन्थों में इसका कहीं स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता। उनके नाटक में शाप से कुछ काल तक के लिए प्रेमोयुगल का वियोग होता है और फिर सम्मिलन हो जाता है। यह विषय कल्पनाप्रसूत है, इसमें सन्देह नहीं। परन्तु इस युक्ति का कोई आधार नहीं कि यह कल्पना उन्हें प्रत्यभिज्ञादर्शन से सूझी। क्योंकि यह दर्शन कहीं भी नहीं कहता कि वियोग जैसा शापमूलक होता है वैसे ही जोवों को विस्मृति भी शापमूलक होता है। 'शाकुन्तल' में भरत वाक्य के परिगतशक्ति इस विशेषण का अर्थ पार्वती सहित होता है। इससे यह सिद्ध नहीं होता कि कवि प्रत्यभिज्ञादर्शन का अनुयायी तथा काश्मीरी था। कालिदास का जन्म काश्मीर है। इस पर विद्वानों में मतैक्य नहीं है। परन्तु कालिदास काश्मीरी साहित्य एवं संस्कृति से प्रभावित थे इस तथ्य को नकारा नहीं जा सकता।

काश्मीर साहित्य के सर्जकों एवं आराधकों की प्रसवभूमि रहा है। प्रो. कल्ला जैसे विद्वानों को कालिदास को काश्मीरी सिद्ध करने की तर्कनाएँ निस्तार नहीं कही जा सकती। अतएव यह मानने में कोई विपत्ति नहीं दिखाई पड़ती कि कालिदास का जन्म काश्मीर में हुआ था और यौवन का स्वर्णोपम पूर्वार्द्ध उसके मनोरम अंचल में व्यतीत हुआ था। परिस्थितियों को चपेट में उसे अपनी जन्मभूमि छोड़नी पड़ी और सौभाग्य से उसे उज्जयिनी को राजपरिषद् का वैभवपूर्ण वातावरण प्राप्त हो गया जहाँ से उसने अपने ललित वाङ्मय का आलोक विद्युरित किया। अतएव यह माना जा सकता है कि

1. ऋतुसंहारम् : 1/4

2. कालिदास, मिराशी, पृ. 61-62

काश्मीर कवि को जन्मभूमि तथा मालवा कर्मभूमि रहे हैं ।¹

• 3. कालिदास की कृतियाँ :

महाकवि कालिदास और संस्कृत भाषा एक दूसरे के पर्याय हैं । संस्कृत भाषा कालिदास को प्राप्त करके और कालिदास संस्कृत भाषा में रचना करके धन्य हो गए हैं ।

संस्कृत काव्य-परम्परा का उत्स खोज पाना असम्भव नहीं है पर दुष्कर अवश्य है । संस्कृत काव्य-कला की सृष्टि को निश्चित तिथि एवं काल में नहीं बाँधा जा सकता । सामान्यतः यह कहा जा सकता है कि काव्य मानवीय भावनाओं का प्रतिनिधित्व करता है अतएव वह मानवीय जाति की सृष्टि के साथ ही आरम्भ हुआ है । उत्कृष्ट साहित्य में समृद्ध संस्कृत-साहित्य भण्डार में जब कालिदास की कृतियों ने अपनी आभा बिखेरी तो पूर्व दिशा के समान सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य ने जनमानस को प्रकाशित कर दिया ।

कालिदास के नाम से प्रचलित कृतियाँ इस प्रकार हैं- ऋतुसंहारम्, मेघदूतम्, कुमारसम्भवम्, रघुवंशम्, अभिज्ञानशाकुन्तलम्, मालविकाग्निमित्रम्, विक्रमोर्वशीयम्, ऋतुबोधुराक्षसकाव्य, शृंगारतिलक, गंगाष्टक, श्यामलादण्डक, नलोदयकाव्य, पुष्पमयाग-विलास, ज्योतिर्विदारणा, कुन्तलेखरदौत्य, लम्बोदरप्रहसन, सेतुबन्ध, कालिस्तोत्र, चिदगगनचन्द्रिका । परन्तु इनमें से सात रचनाएँ हैं जो कालिदास को मानो जाती हैं । दो गोतिकाव्य-ऋतुसंहारम्, मेघदूतम्, दो महाकाव्य-कुमारसम्भवम्, रघुवंशम् और तीन नाटक- अभिज्ञानशाकुन्तलम्, मालविकाग्निमित्रम्, विक्रमोर्वशीयम्, इसमें ऋतुसंहारम् कालिदास को ही कृति है । इस पर विद्वानों में मतभेद है तथा कुमारसम्भवम् भी केवल आठ सगौ तक ही कालिदास द्वारा रचित माना जाता है ।

कालिदास की प्रमाणिक कृतियाँ निम्न प्रकार हैं :

1. ऋतुसंहारम् :

गोतिकाव्य उतना ही प्राचीन है जितने कि वेद हैं । रागात्मकता गोतिकाव्य की आत्मा है । वैदिक मन्त्रों में रागात्मकता पाई जाती है । गोतिकाव्य सीमित

अर्थों में व्यक्ति प्रधान होता है। महाकाव्य को भौति गोतिकाव्य भी कालिदास की लेखनी का स्पर्श पाकर ही प्रतिष्ठित हो पाया अतः महाकाव्य को भौति गोतिकाव्य परम्परा में भी कालिदास का नाम अग्रणी है।

ऋतुसंहारम् कालिदास द्वारा रचित खण्डकाव्य है। इस गोतिकाव्य में छह ऋतुओं क्रमशः शोष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त, शिशिर, बसन्त ऋतु का मनोहारो चित्रण प्रस्तुत किया गया है। यह मुक्तक शैली में लिखा गया है। प्रत्येक श्लोक प्रकृति के प्रतिक्षण बदलते रूप को व्यक्त करने में समर्थ है। अनुप्रासमय शब्द विन्यास, प्रसादगुण से ओत-प्रोत यह रचना पाठक के मन में प्रकृति प्रेम उत्पन्न कर ऋतुओं को एक नये दृष्टिकोण से देखने का आयाम प्रस्तुत करती है।

ए.बो.कोथ का विचार है ऋतुसंहारम् कालिदास की युवावस्था की रचना है।¹

अरबिन्द का भी यही विचार है कि ऋतुसंहारम् कालिदास की प्रथम कवि प्रयास है।²

2-मेघदूतम् :

कालिदास की दूसरी गीतिरचना मेघदूतम् विश्व साहित्य में मूर्धन्य मधुर गीति काव्य है जो पूर्वमेघ एवं उत्तरमेघ इन दो भागों में विभाजित है। मेघदूतम् एक प्रबन्धात्मक गीतिकाव्य है। इसके नायक एवं नायिका यक्ष एवं यक्षिणी हैं। परन्तु इनके विरह एवं पीड़ा को कालिदास ने एक सामान्य विरहो जन को पीड़ा के रूप में प्रस्तुत किया है। यक्ष का विरह केवल यक्ष तक सीमित नहीं रह पाता। प्रत्येक वह व्यक्ति जो अपनी प्रिया के विरह में व्याकुल है, अपनी पीड़ा का यक्ष को पीड़ा में एकीकरण कर लेता है।

कवि का काव्य कौशल तभी प्रशंसनीय होता है जब उसकी रचना का पवित्र प्रयोजन

1. A work of his youth is certainly Rtusamharam,

A.B. Keith, History of Sanskrit Literature, P.

2 The seasons of Kalidasa is one of those early work of a great poet which are ever more interesting to a student of his evolution than his later master pieces.

अपने पात्रों के माध्यम से जनमानस को भावनाओं को व्यक्त एवं प्रतिष्ठित करना है। मन्दाक्रान्ता छन्द में रचित यह काव्य विरही को हार्दिक व्याकुलता एवं पोड़ा का शब्द देता है। गेय होने के कारण जब रागात्मक पोड़ा वाक् का आश्रय पाकर स्फुटित होता है तो मेघदूतम् पर कालिदास का कोई अधिकार नहीं रह जाता। वह जन-जन को कविता हो जाती है। यही मेघदूतम् एवं कालिदास का वैशिष्ट्य है।

कुबेर द्वारा निर्वासित रामगिरि पर निवास करनेवाले यक्ष का मन आषाढमास में उमड़ते हुए मेघों को देखकर पोड़ा से भर उठता है। अपने समान हो अपनी प्रियतमा यक्षिणी को पोड़ा एवं मनोदशा का विचार कर वह मेघ को दूत बनाकर उसके द्वारा संदेश भेजने का विचार करता है। यक्ष मेघ से प्रोत्तिपूर्ण वचन कहते हुए उससे अपनी प्रिया के पास संदेश ले जाने को कहता है। पूर्वमेघदूत में यक्ष मेघ का मार्गनिर्देशन करता है और उत्तरमेघदूतम् में यक्षिणी के रूप सौंदर्य का वर्णन है।

3. रघुवंशम् :

रघुवंशम् महाकाव्य में उन्नोत सर्ग हैं। इसका उपजोव्य ग्रंथ रामायण है। कालिदास द्वारा रघुवंशम् को रचना का उद्देश्य आदर्शभारतीय परम्पराओं एवं जीवन-दर्शन को प्रतिष्ठित करना था। डॉक्टर देवीदत्त शर्मा लिखते हैं कि अपनी इस कथावस्तु के परिवेश में इस क्रान्तदर्शी कवि ने यथा स्थान और यथायोग समष्टि और व्यष्टि के बीच जीवन को सम्पूर्णता का जो अंकन किया है वह आज भी भारतीय जीवन के लिए मानदण्ड बना हुआ है। प्रेम और कर्तव्य, अनुराग और विराग, भोग और योग स्नेह और प्रतिकार, हिंसा और दया, संग्रह और त्याग का जो अनुपम और सर्वांगोण रूप इसमें प्रस्तुत किया है वह अन्यत्र दुर्लभ है।¹

रघुवंशम् महाकाव्य में उन्नोत सर्ग हैं तथा अदृष्टादृष्ट सूर्यवंशी राजाओं का वर्णन है। इसके प्रारम्भिक नौ सर्गों में रामचन्द्र के चार पूर्वजों—दिलीप, रघु अज तथा दशरथ का वर्णन है। इसके बाद के छह सर्गों में रामचन्द्र के चरित का वर्णन है तथा अन्तिम चार सर्गों में लव, कुश और राजा अग्निमित्र का वर्णन है।

1. रघुवंशम् एक विश्लेषण : डॉ. देवीदत्त शर्मा, पृ. 3

4. कुमारसम्भवम् :

इस महाकाव्य में सत्रह सर्ग हैं। इन सत्रह सर्गों में देवाधिदेव शंकर एवं पार्वती के प्रणय चित्रण के साथ कुमार कातिकिय के जन्म का वर्णन है। कुमारसम्भवम् के सर्गों की संख्या को लेकर विद्वानों में मतभेद है। कतिपय विद्वान आठ सर्गों पर मल्लिनाथ को टोका होने के कारण से इसे आठ सर्गों को मूल कृति मानते हैं। इस काव्य का कुमारसम्भवम् नाम होने से कतिपय विद्वानों का अनुमान है कि कालिदास ने कुमार के जन्म तक को घटनाओं एवं देवताओं की विजय तक वर्णन किया है। अतः मूलकृति सत्रह सर्गों तक है।

कुमारसम्भवम् महाकाव्य की कथावस्तु इस प्रकार है :

प्रथम सर्ग में हिमालय का विशद वर्णन और पार्वती का बालसुलभ क्रोड़ाओं के साथ शंकर को अर्चना हेतु पशुप-चयन तथा पूजा को सामग्री जुटाने का वर्णन है। द्वितीय सर्ग में तरकासुर द्वारा सतप्त हुए देवताओं द्वारा ब्रह्मा की स्तुति का वर्णन है। ब्रह्मा द्वारा शिव और पार्वती का एकीकरण कराने का परामर्श दिया जाता है। तृतीय सर्ग में कामदेव अपने मित्र बसन्त के साथ शिव के मन में पार्वती के प्रति आकर्षण जगाने का प्रयास करता है। शिव क्रोधित होकर कामदेव को भस्म कर देते हैं। चतुर्थ सर्ग में रति विलाप का वर्णन है। रति कामदेव के साथ सति होने की उद्धत हो उठती है तभी आकाशवाणी द्वारा रति को जोवन-धारणा किए रखने को कहा जाता है और आश्वासन दिया जाता है कि शंकर काम को पुनः जोवन देंगे। पंचम सर्ग में कामदहन की घटना से पार्वती अपने रूप-सौन्दर्य को धिक्कारती है और शिव की प्राप्ति करने के लिए घोर तपस्या करती है। शिव पार्वती की तपस्या से प्रसन्न होकर स्वयं की पार्वती का तप कीर्तदास कहते हैं। षष्ठम सर्ग में शिव अरुन्धती सहित सप्त ऋषियों की नगराज हिमालय के पास पार्वती के साथ विवाह का प्रस्ताव भेजते हैं। नगराज और उनकी पत्नी प्रस्ताव स्वीकार कर लेते हैं तथा शिव पार्वती की सगाई सम्पन्न हो जाती है। सप्तम सर्ग में शिव एवं पार्वती के विवाह का वर्णन है। अष्टम सर्ग में शंकर उमा के वैवाहिक जोवन के मनोरम चित्र प्रस्तुत किये गये हैं तथा प्रकृति वर्णन भी किया गया है। नवम सर्ग में क्रोडारत शिव-पार्वती के पास इन्द्र द्वारा अग्नि

को कबूतर रूप में भेजा जाता है। शिव अग्नि में अपना वीर्य स्थापित कर देते हैं। अग्नि उसे सहन न करने के कारण गंगा में छोड़ देती है। दशम सर्ग में गंगा भी उसको धारणा करने में असमर्थ होने के कारण स्नान हेतु आयो छह कृतिकाओं के शरीर में स्थापित कर देती है और कृतिकाएँ उस वीर्य को वेतसवन में छोड़ देती हैं। एकादश सर्ग में आकाश मार्ग से विचरते हुए शिव-पावन्तो शर-वन में पड़े हुए बालक को अपना समझकर ले आते हैं। वहाँ उसका नाम कुमार रखा जाता है। छह दिन के अन्दर वह बालक बड़ा होकर शस्त्रशास्त्र में पारंगत हो जाता है। द्वादश-सर्ग में शिव देवगणों की प्रार्थना पर कुमार को देवसेना का सेनापति बनाकर भेज देते हैं। त्रयोदश सर्ग में कुमार स्कन्द तारकासुर पर आक्रमण कर देता है। चतुर्दश सर्ग में सत्रह सर्ग तक देवताओं और असुरों के संग्राम का वर्णन है। कुमार तारकासुर का वध कर देते हैं। इन्द्र फिर से स्वर्ग में निश्चित होकर राज्य करने लगते हैं।

अभिज्ञानशाकुन्तलम् :

इस नाटक को गणना संस्कृत साहित्य के सर्वश्रेष्ठ नाटकों में होता है। इस नाटक के सात अंकों में दुष्यन्त और शकुन्तला के प्रणय, वियोग तथा पुनर्मिलन का वर्णन किया है। अभिज्ञान शाकुन्तलम् के प्रथम अंक में हस्तिनापुर नरेश दुष्यन्त आखेट करते हुए कण्वाश्रम में पहुँच जाते हैं। जहाँ पर वह निसर्ग कन्या शकुन्तला का रूप सौन्दर्य देखकर मोहित हो जाता है। द्वितीय अंक में शकुन्तला एवं दुष्यन्त एक दूसरे पर आसक्त हो जाते हैं। तृतीय अंक में दुष्यन्त शकुन्तला गान्धर्व विवाह कर लेते हैं। चतुर्थ अंक बहुत ही मार्मिक है। इसमें शकुन्तला को विदार्ड का वर्णन है। इस अंक में दुर्वासा दुष्यन्त के विचारों में मग्न शकुन्तला द्वारा अतिथि सत्कार न किए जाने पर क्रोधित होकर शाप दे देते हैं कि तू जिसका ध्यान कर रहो है, वह तुझे भूल जायेगा। शकुन्तला को सखियाँ यह सुनकर दुर्वासा के क्रोध का शमन करने हेतु प्रयास करती हैं। दुर्वासा शाप वापिस तो नहीं लेते पर यह आश्वासन देते हैं कि अभिज्ञान देखकर वह उसे पहचान जायेंगे। कण्वश्रृषि शकुन्तला को गर्भवती जानकर पति के पास भेजने को तैयारो करते हैं। पंचम अंक में दरबार में पहुँची शकुन्तला को दुष्यन्त शमावशाद् भूल जाता है और उसे पहचानने से इंकार कर देता है। शकुन्तला राजा द्वारा दी गयी अँगूठी दिखाना चाहती

चाहती है तो वह वहाँ नहीं होती क्योंकि वह पानी पीते समय उसमें गिर जाती है। राजा द्वारा परित्याग को गयी शकुन्तला विलाप करती है। उसी समय एक दिव्य ज्योति उसे उड़ाकर ले जाती है। षष्ठम अंक में महर्षि मारोच के आश्रम में शकुन्तला अपनी माता मेनका के साथ समय काटती है। हस्तिनापुर में भी एक मछुर को मछली के पेट से अँगूठी प्राप्त हो जाती है। जब वह मुद्रिका राजा के पास ले जाई जाती है तो उसे देखते ही दुष्यन्त को शकुन्तला के साथ किए गए गान्धर्व विवाह की स्मृति हो जाती है। शकुन्तला दर्शन के लिए व्याकुल होकर दुष्यन्त राजकार्यों से भी उदासीन हो जाता है। सातवें अंक में देव-दानव संग्राम में राजा देवताओं को सहायता हेतु इन्द्रलोक जाता है। वहाँ से लौटते समय जब वह मारोचाश्रम के निकट से निकलता है तो वहाँ उसका अपने पुत्र एवं शकुन्तला से साक्षात्कार हो जाता है और वह अपने पत्नि तथा पुत्र सहित अपने राज्य को लौट जाता है।

मालविकाग्निमित्रम् :

इसको रचना कौशल के आधार पर महाकवि का प्रथम नाटक मानते हैं। इस नाटक में पाँच अंक हैं जिसमें राजा अग्निमित्र और राजकुमारी मालविका की प्रणय कथा वर्णित है। प्रथम अंक में महाराजा अग्निमित्र को मालविका के प्रति प्रणय चिह्न दिखाई देते हैं। अग्निमित्र के हृदय में अपनी प्रेयसी के चित्रावलोकन मात्र से ही प्रणय का अंकुर प्रस्फुरित हो जाता है और वह मालविका को पाने के लिए व्याकुल हो जाता है। द्वितीय अंक में संगीत प्रतिस्पर्धा की भावना से गणदास एवं एक अन्य संगीताचार्य हरिदत्त द्वारा अपनी-अपनी शिष्याओं द्वारा रंगशाला में प्रदर्शन कराया जाता है। वहाँ अग्निमित्र को मालविका के दर्शन होते हैं। तृतीय अंक में अग्निमित्र से मिलन के लिए नायिका व्याकुल रहती है किन्तु अग्निमित्र को महारानी झरावती दोनों को मिलने नहीं देती। चतुर्थ अंक में झरावती अग्निमित्र और मालविका को प्रणयलोला से कुपित होकर मालविका और उसकी सहचरी वकुलबालिका को अन्तःपुर में बन्दी बना लेती है और नागमुद्रा दिखाई जाने पर ही छोड़ने की आज्ञा देती है। पाँचवें अंक में वीरसेन विदर्भ विजय के उपलक्ष्य में बहुमूल्य रत्नदासियाँ भेट में भेजता है। वह दासियाँ प्रमादवन में महारानी और परिव्राजिका के साथ आई मालविका को पहचान

पहचान लेती है और उसे विदर्भराज माधवसेन को बहन बताती है। इस रहस्य का उद्घाटन होते ही महारानी अग्निमित्र के साथ मालविका के विवाह की स्वीकृति दे देती है।

7. विक्रमोर्वशीयम् :

यह कालिदास द्वारा रचित दूसरा प्रणय प्रधान नाटक है। इसमें पुरुरवा और उर्वशी की प्रणय लीला वर्णित है। इस नाटक में पाँच अंक हैं। प्रथम अंक में कैलाशमर्बत पर समाधिस्थ भगवान शंकर को उपासना के बाद इन्द्रलोक लौटती देवकन्या उर्वशी का एक दैत्य अपहरण करने को चेष्टा करता है तभी महाराज पुरुरवा वहाँ पहुँचकर उर्वशी को रक्षा करते हैं और इस आकस्मिक मिलन के पश्चात् एक दूसरे पर आसक्त हो जाते हैं। दूसरे अंक में उर्वशी पुरुरवा को प्रणय सन्देश भेजकर अपने प्रेम का प्रदर्शन कर देती है। तृतीयअंक में इन्द्रलोक में लक्ष्मी स्वयंवर नाटक का अभिनय किया जाता है। इसमें उर्वशी प्रमादवश पुरुषोत्तम के स्थान पर पुरुरवा बोल जाती है। जिससे उसे देवलोक से मर्त्यलोक जाने का शाप मिलता है। उर्वशी द्वारा क्षमा याचना करने पर मुनि उसके शाप को अवधि पुत्र दर्शन तक कम कर देते हैं। चतुर्थ अंक में पुरुरवा उर्वशी का वियोग दिखाया जाता है। पुरुरवा के मंदाकिनो के तट पर एक अन्य सुवती पर आसक्त हो जाने से उर्वशी खिन्न होकर गन्धमादन वन में चली जाती है और वहाँ कातिकिय के शाप के कारण लता बन जाती है। पुरुरवा आकाशवाणी द्वारा ज्ञान होने पर संगमनोय मणि प्राप्त कर जब लता का आलिंगन करता है तो लता उर्वशी के आयुष् नामक पुत्र उत्पन्न होता है। वह उसे ऋषि आश्रम में छोड़ देती है परन्तु मुनि उसे उसके पिता के वहाँ भेज देते हैं। तो पुत्र दर्शन से उर्वशी का शाप समाप्त हो जाता है। उसे इन्द्रलोक जाना होता है। किन्तु देवदानव युद्ध में पुरुरवा के विक्रम से प्रसन्न इन्द्र उर्वशी को सदा के लिए मर्त्यलोक रहने को अनुमति दे देते हैं और इस सुखमय मिलन के साथ यह नाटक समाप्त हो जाता है।

3. कालिदास को विवादास्पद कृतियाँ :

प्रस्तुत शोधकार्य में कालिदास को तीन विवादास्पद कृतियों को लिया गया है। ऋतुसंहारम् गोतिकाव्य, कुमारसम्भवम् महाकाव्य सत्रह सर्ग तक तथा चिदगगनचन्द्रिका।

यहाँ ऋतुसंहारम् और कुमारसम्भवम् महाकाव्य के सत्रह सर्ग तक होने की प्रमाणिकता हेतु कुछ मत प्रस्तुत किये जा रहे हैं। चिदगगनचन्द्रिका भी कालिदास की रचना है, इसका विवेचन परिशिष्ट रूप में चिदगगनचन्द्रिका में प्रत्यभिज्ञादर्शन के तत्त्व के रूप में किया जायेगा।

1. ऋतुसंहारम् :

ऋतुसंहारम् कालिदास की कृति है, इस विषय पर विद्वानों में मतभेद है। कुछ विद्वानों के अनुसार ऋतुसंहारम् उस कालिदास की रचना नहीं है, जिसने रघुवंशम् और कुमारसम्भवम् जैसे महाकाव्य तथा मेघदूतम् जैसा खण्डकाव्य लिखा है। ऋतुसंहारम् पर मल्लिनाथ की टीका भी प्राप्त नहीं होती। परन्तु वे विद्वान जो ऋतुसंहारम् को कालिदास की रचना मानते हैं, अपने मतों की पुष्टि हेतु यह तर्क प्रस्तुत करते हैं कि ऋतुसंहारम् कालिदास की ही रचना है। वल्लभदेव की सुभाषितवली में ऋतुसंहारम् के चार श्लोक पाये जाते हैं, जिनमें से दो कालिदास के नाम से उद्धृत हैं और दो श्लोक भी ऋतुसंहारम् के ही हैं परन्तु अज्ञात नाम से उद्धृत हैं मन्दसौर प्रशस्ति में भी ऋतुसंहारम् के कुछ श्लोकों की छाया है। ऋतुसंहारम् में प्रयुक्त शब्द और भावसामय के आधार पर कालिदास को अन्य कृतियों से तुलना करने पर भी पता चलता है कि ऋतुसंहारम् कालिदास की ही कृति है। कवि कालिदास ने ऋतुसंहारम् में वर्षा ऋतु के वर्णन में दूसरे सर्ग के पाँचवें श्लोक में इन्द्रगोपकः अर्थात् बीरबहूटो शब्द का प्रयोग किया है। ऐसा ही इन्द्र गोपक शब्द का प्रयोग कालिदास ने विक्रमोर्वशीयम् के चतुर्थअंक में किया है। पुरुरवा उर्वशी को खोजते हुए भूमि पर पड़ी हुई वोर बहूटियों को उर्वशी के महावर से युक्त वोरों को छाप समझता है वह कहता है :

भवतुः आदास्य तावत् परिक्रमः विभाव्य च ज्ञातम् । कथं
सेन्द्रगोप नवशाद्वलमिदम् ।

ऋतुसंहारम् के बसन्त वर्णन और कुमारसम्भवम् के बसन्त वर्णन में बहुत साम्य पाया जाता है। कालिदास ने ऋतुसंहारम् के इस श्लोक में वैदूर्यमणि की बात कही है।

प्रभिन्नवैदूर्यनिमैस्तृणाङ्कुरैः समाचिता प्रोत्थितकन्दलीदलैः ।

विभाति शुक्लेतररत्नभूषिता वराङ्गनेवक्षितिरिन्द्रगोपकैः ।।¹

मेघदूतम् के इस श्लोक में भी वे कमलदण्ड को वैदूर्यमणि से निर्मित बताते हैं :

वापी चास्मिन् मरकतशिलाबद्धसोपानमार्गा

हैमैशुन्ना विकचकमलै स्निग्ध वैदूर्यनालैः ।

यस्यास्तोये कृतवसतयो मानसं सन्निकृष्ट

नाध्यास्यन्ति व्यपगतशुचस्त्वामपि प्रेक्ष्य हंसाः । ।

अतः ऋतुसंहारम् को कालिदास को ही कृति माना जाता है।

कुमारसम्भवम् :

कुमारसम्भवम् महाकाव्य में 17 सर्ग पाये जाते हैं पर विद्वानों के मतानुसार केवल आठ सर्ग ही कालिदास द्वारा रचित हैं। प्रसिद्ध टीकाकार वल्लभदेव, मल्लिनाथ, नारायण, अरुणगिरिनाथ और चरितवर्धन ने प्रथम आठ सर्गों पर ही टीका लिखी है। वह शेष नौ से सत्रह सर्गों तक के बारे में कुछ नहीं लिखते।²

कुमारसम्भवम् के नौ से सत्रह सर्गों तक का लेखक कौन है। इस सम्बन्ध में व्याख्याकारों में मतभेद है। वल्लभदेव, मल्लिनाथ, अरुणगिरिनाथ और नारायण का विश्वास है कि कुमारसम्भवम् का अन्त आठवें सर्ग में शिव और पार्वती के विवाह के साथ हो जाता है। अरुणगिरिनाथ ने अपनी व्याख्या 'प्रकाशिका' में इस विषय में विस्तार से चर्चा की है, वह कहते हैं कि कुमारसम्भवम् का प्रमुख उद्देश्य शिव-पार्वती का एकीकरण या विवाह है। कुमार का जन्म और तारकासुर का वध नहीं है। देवता ब्रह्मा के पास अपनी विजय हेतु एक सेनानीकी रचना हेतु किए गए थे। ब्रह्मा ने उस उद्देश्य को पूर्ति के लिए देवताओं से शिव और पार्वती को एक करने को कहा। प्रमुख उद्देश्य शिव-पार्वती का एक होना था, जिससे कुमार का जन्म सम्भव होता था। फिर कुमार का जन्म होना और तारकासुर का वध इत्यादि तो बाद की बातें हैं।

1. उत्तरमेघदूतम् : 3

2. Ed. Reweprasad Dwedi, Kalidasa granthvali , Introduction 10 to the second revised edition, 1986, P. XIV

तारकासुर का वध इस काव्य में साध्य नहीं है।¹ इसी प्रकार के विचार कृष्णामचारी ने भी व्यक्त किए हैं उनके अनुसार कालिदास ने केवल प्रथम आठ सर्गों की ही रचना की है।

श्री आर. वी. कृष्णामचारी कुमारसम्भवम् के आठसे सत्रह सर्गों में अनेक भाषागत और भावगत अशुद्धियों का वर्णन करते हैं।² कुमारसम्भवम् के नौ से सत्रह तक के सर्गों में अपाणिनीय और अकालिदासीय प्रयोग भी मिलते हैं जैसे पाणिनी सूत्र में धुमित के स्थान पर धुब्ध का प्रयोग अनुचित बताया जाता है।³ कालिदास कुमारसम्भवम् के तीसरे सर्ग में धुब्ध का प्रयोग धुमित के अर्थ में करते हैं। अकालिदासीय प्रयोग भी मिलते

1. नात्र तारकासुरनिग्रहः काव्ये साध्यः तदिच्छामो विभो ऋष्टं सेनानन्यं तस्य शान्तये । ॥.5॥ इति देवैः कुमारसृष्टिमात्रस्यैव ब्रह्माणं प्रति पार्थितत्वात् । तारकासुरनिग्रहस्तु कुमारोदभवप्रस्तावकतया निमित्तत्वैनोपाक्षिप्तः यथा किरातार्जुनीये दुर्योधनजयः शम्भोर्यतध्वमाऋष्टं अयस्कान्तेन लौहवत् ॥ ॥.59॥ इति ब्रह्मणः प्रतिवचनेनत्युप क्रमाद अद्यप्रभूतोति परामर्शात् समदिवशनिशोथमित्युप-संहाराच्च शम्भोश्चित्ताकर्षणमात्र एव तात्पर्यम् ॥

Ed. T. Ganapati Shastri, KumarSambhavam of Kalidasa, with the commentory, Prakasika of Arunagirinatha & Vivarana of Narayana pandita, Trivandrum , Part-1, 1914, P. 3

2. नवमादयः सर्गाः येन केनापि विरचिता स्युः नवमादिषु किल सर्वेषु क्वचित्क्वचित्पञ्चदशो वर्णनादिभिश्च पूर्वतरसंवाद दशनिऽपि भूयसा विसंवाद एव समुपलभ्यते किंच तत्र प्रायेण विसंस्थुलानि परस्परसौहार्द विरहितानि शिथिल-शिथिलानि क्वचिद्वक्चिदलोल प्रायाणि अप्रमुक्तानि पुनरुक्त कल्यानि पदजातानि नियतम कालिदासीय त्वमेव वनमादीनां सर्गाणामावेदयति ।

R.V. Krishnamachary, in the Sahrdya Sanskrit Journal,

Jx. 151, Madras.

3. पाणिनि सूत्र, 7.2.18 ऋटाध्यायी

है जैसे कालिदास कुमारसम्भवम् के एक श्लोक में उत्तरोय के लिए 'द्वितीयकौपीन' प्रयोग करते हैं,¹ परन्तु अन्य कृतियों में कालिदास ने उत्तरोय के लिए द्वितीयकौपीन का प्रयोग नहीं किया है। कुछ विद्वानों के अनुसार कालिदास ने हो कुमारसम्भवम् के 17 सर्गों की रचना की है। इस मत की पुष्टि हेतु यह तर्क दिए जाते हैं :

कुमारसम्भवम् के 17 सर्गों की हो सम्पादित करने की परम्परा चली आ रही है। प्रसिद्ध टीकायें तो आठ सर्गों पर हो प्राप्त होती हैं। आधुनिक विद्वानों ने शेष 9 सर्गों पर भी टीकायें लिखी हैं।

पाण्डुलिपि के प्रतिलिपिकारों ने 1 से 17 सर्गों तक को एक साथ लिखा है अलग अलग नहीं। यह पाण्डुलिपियाँ विभिन्न लाइब्रेरियों में उपलब्ध हैं। बनारस के पाण्डुलिपि संग्रहालय में दो पाण्डुलिपियाँ हैं जिसमें 17 सर्ग हैं।² अहमदाबाद के एल. डी. इन्स्टिट्यूट में भी एक पाण्डुलिपि है, जिसमें 17 सर्ग हैं।³

कालिदास ने यदि यह महाकाव्य आठ सर्गों तक लिखा होता तो इसका नाम पार्वतीपरिणयम् होता कुमारसम्भवम् नहीं।

कालिदास कातिकिय के जन्म और उनकी देवताओं पर विजय का वर्णन करना चाहते थे इसका आभास उनकी कृति विक्रमोर्वशीयम् के एक उद्धरण से होता है। विक्रमोर्वशीयम् के पाँचवे अंक में उर्वशीपुत्र आयुष का यौवराज्याभिषेक होता है। उस समय नारद उर्वशी से कहते हैं— तुम्हारे पुत्र आयुष का यौवराज्याभिषेक उस उत्सव का स्मरण दिला रहा है, जिसमें इन्द्र ने कातिकिय को सेनापति बनाया था।

1. हरो विकीर्ण धनधर्मतोयैर्नेत्राञ्जनाङ्क हृदयप्रियायाः।

द्वितीयकौपीन चला चलेनाहरन्मुखन्दोरकलिङ्कनोत्था।

कुमारसम्भवम् : 9/19

2. Ms. Marked 'E' Acc. No. 2004. Ms. Marked V. AccNo. 4008

3. Ms. 19455. I.D. Institute Ahmedabad.

नारद :

आयुषो यौवराज्यश्रो स्मारयत्यात्मजस्य ते ।

अभिषिक्त महासेनं सेनापत्ये मरुत्वात् ॥ ¹

कुमारसम्भवम् ² के तेरहवें सर्ग में कुमार के देवसेनापति बनाने और अभिषेक का वर्णन है । अतः सत्रह सर्ग तक कुमारसम्भवम् कालिदास द्वारा ही रचित है ।

1. विक्रमोर्वशीयम् : अंक 5, श्लोक 23, 5/23

2. कुमारसम्भवम् : 13/1, 2, 3, 4,

द्वितीय अध्याय

पृत्यभिज्ञादर्शन का साहित्य एवं साहित्यकार

द्वितीय अध्याय

प्रत्यभिज्ञादर्शन का साहित्य एवं साहित्यकार

• क० काश्मीरशैवमत :

शैवदर्शन अत्यन्त प्राचीन है। यह दर्शन सम्पूर्ण भारत में प्रचलित है। प्रागैतिहासिक शैवधर्म, जिसके प्रमाण हमको आगे चलकर सिन्धु घाटी की सभ्यता से प्राप्त होते हैं, काश्मीर की हो भूमि में अंकुरित, पल्लवित तथा परिसीमित रह जाने के कारण काश्मीर शैवदर्शन के नाम से प्रचलित है। इस दर्शन के कई रूप प्राप्त होते हैं- द्वैतवादो, द्वैताद्वैतवादो तथा अद्वैतवादो। शैवदर्शन का साहित्य द्वैतवादी तथा अद्वैतवादी दोनों शाखाओं का मिलता है। शैवदर्शन उत्तरी और दक्षिणी इन दो शाखाओं में विभाजित हो गया है। उत्तरी शैवदृष्टि जिसे काश्मीरी शैवदर्शन कहा जाता है अद्वैतवादी है तथा दक्षिणी शैवसिद्धान्त द्वैतवादी है।

उत्तरी और दक्षिणी दोनों ही शाखायें समान रूप से आगमों को अपनी मान्यताओं का आधार मानती हैं परन्तु आगमों का प्रचार पहले उत्तर भारत में हुआ या दक्षिणी भारत में यह प्रमाणतः सिद्ध नहीं है। उत्तरी शैवदर्शन की भाँति दक्षिणी शैवसिद्धान्त का भी प्रचुर साहित्य आज उपलब्ध है। दक्षिणी शैवदर्शन की दो शाखाओं का पता चलता है : स्कन्दशाखा और नन्दीशाखा। दक्षिण में प्रचलित परम्परा के अनुसार भगवान शिव ने इस रहस्यमयी ज्ञान को प्रारम्भ में स्कन्द और नन्दी को प्रदान किया था, इसी से यह दोनों शाखायें बनीं दोनों ही परम्परायें द्वैतवाद का समर्थन करती हैं और आगमतन्त्रों को ग्रामाणिक मानती हैं। 'मृगेन्द्र' और कामिक जैसे तन्त्रों को भी प्रमाण रूप में स्वीकृत किया गया है अन्तर केवल इतना है कि काश्मीर शैवदर्शन में उक्त तन्त्रों में अद्वैती विचारधारा खोजी गई है, जबकि दक्षिण शैव दर्शन में द्वैतवादी। द्वैतवादी तथा अद्वैतवादी शाखा में से कौन पूर्ववर्ती हैं कौन परवर्ती इस पर मतभेद है। कुछ विद्वानों के अनुसार शैवाद्वैत तथा शैवद्वैत समानान्तर प्रचलित थे तथा दोनों ही शाखाओं के दार्शनिक अपने मतों के अनुकूल साहित्य सृजन में लगे थे।

काश्मीर में शैवमत का आरम्भ कब हुआ इस विषय में निश्चित कुछ नहीं है। काश्मीर के उत्तर भारत में स्थित होने के कारण यहाँ अद्वैतवादो शाखा का ही प्रचलन था। आज काश्मीर शैवदर्शन अद्वैत शैवदर्शन के रूप में जड़े जस्ये हुए हैं। काश्मीर शैवदर्शन कहने का अर्थ हो है शैवद्वैतदर्शन।

1. काश्मीर शैवदर्शन के विविध नाम :

काश्मीरी शैवदर्शन के विविध नाम प्रचलित हैं—काश्मीरी शैवमत, काश्मीरी शैवदर्शन, शिवागम्, शिवशासन, शिवरहस्य, शिवाद्वयवाद, त्रिकशासन, त्रिकशास्त्र, इत्यादि। अभिनवगुप्त ने तन्त्रलोक में इसे त्रिकदर्शन कहा है :

यस्मादेषणवित्क्रिया यदुदिता ह्यनन्दचिद्भूमयो
यस्यैवाप्रदुर शक्तिवैभवमिदं सर्व यदेवं विधम् ॥ १॥
तद्वाम त्रिकतत्त्वमद्वयमयं स्वातन्त्र्यपूर्णप्रथमं
चिप्ते स्ताच्छिवशासनागमरहस्याच्छादनध्वंसिमे ॥
शिवशक्ति संघात्मात्मकपरत्रिकशब्द वाच्यम्
अत एवान्ह 'तत्सारं त्रिकशास्त्रम्' इति तदुक्तं ॥¹

तन्त्रसार² में षड्विंशास्त्र तथा ईश्वरप्रत्यभिज्ञा विवृत विमर्शिनी में स्वातन्त्र्यवाद कहा है - 'अयं स्वातन्त्र्यवादः'³ । अन्यत्र इसे 'स्पन्दशास्त्र',⁴ रहस्यसम्प्रदाय⁵ और शिवाद्वयवाद⁶ कहा गया है। माधवाचार्य⁷ ने उत्पलाचार्य की रचना ईश्वरप्रत्यभिज्ञा के आधार पर इस दर्शन को प्रत्यभिज्ञादर्शन कहा है।

1. तन्त्रलोक; भाग 1, पृ. 7, 20, 49

2. तन्त्रसार : पृ. 92

3. ईश्वरप्रत्यभिज्ञा विवृतविमर्शिनी 1, पृ. 9

4. स्पन्दनिर्णय, पृ. 3, शिवदृष्टि 2, पृ. 36

5. शिवसूत्र विमर्शिनी : पृ. 1, स्पन्दसन्दोह, पृ. 10

6. स्पन्दसन्दोह, पृ. 20

7. सर्वदर्शन संग्रह, पृ. 347

8. काश्मीर शैविज्म, पृ. 1

जे.सी. चटर्जी¹ ने स्पन्द और प्रत्यभिज्ञा दोनों शाखाओं को मिलाकर इसे काश्मीर शैवदर्शन माना है।

2. काश्मीर शैवदर्शन की शाखाएँ :

शैवाद्वैतदर्शन की दो प्रमुख शाखाएँ मानी जाती हैं : . 1. स्पन्दशाखा, 2. प्रत्यभिज्ञाशाखा। कुछ विद्वान् तीन शाखाएँ मानते हैं : . 1. क्रम, . 2. कुल, . 3. प्रत्यभिज्ञा। स्पन्दशाखा के संस्थापक वसुगुप्त मानते जाते हैं और प्रत्यभिज्ञाशाखा के संस्थापक सोमानन्द माने जाते हैं।

स्पन्द और प्रत्यभिज्ञा दोनों शाखाओं का आधार अद्वैतवादी शैवतन्त्र है। दोनों शाखाओं के दर्शन विचारों में भी साम्य है। भेद केवल परमतत्त्व की अनुभूति के सम्बन्ध में है। स्पन्द शाखा में ध्यान की प्रधानता है और प्रत्यभिज्ञा शाखा में प्रत्यभिज्ञान की। स्पन्द शाखा के अनुसार ध्यान के द्वारा साधक को पहले भैरव या महेश्वर का चित्त में दर्शन होता है और फिर समस्त मलों की निवृत्ति होती है, जिसे परमेश्वर से साक्षात्कार होता है। इसके विपरीत प्रत्यभिज्ञा दर्शन के अनुसार जोव का स्वयं ईश्वर रूप में प्रत्यभिज्ञान करना हो शिव के साक्षात्कार का साधन है।

वस्तुतः स्पन्दशाखा का साहित्य व्यवहारिक है। अतः सोमानन्द द्वारा संस्थापित प्रत्यभिज्ञाशाखा ही यथार्थतः प्रमुख दार्शनिक शाखा है। जिसमें दर्शनोचित प्रणाली के द्वारा सिद्धान्तों का विवेचन उपलब्ध होता है। प्रत्यभिज्ञादर्शन ही शैवदर्शन के मूल स्वरूप का अधिक प्रतिनिधित्व करता है।

कुछ विद्वान् सम्पूर्ण काश्मीरशैवदर्शन को प्रत्यभिज्ञादर्शन कहने का विरोध करते हैं। उनके अनुसार प्रत्यभिज्ञा काश्मीर-शैवदर्शन की एक शाखा है। काश्मीर शैवदर्शन के विभिन्न नामों और शाखाओं के विभाग के तात्त्विक विवेचन में न जाते हुए यह कहा जा सकता है कि व्यवस्थित दर्शन की दृष्टि से प्रत्यभिज्ञादर्शन ही काश्मीर शैवदर्शन है।² यही कारण है कि काश्मीरशैवदर्शन और प्रत्यभिज्ञादर्शन नाम पर्याय

1. काश्मीर शैविज्म, पृ. 1

2. बौद्ध वेदान्त एवं काश्मीर शैवदर्शन, पृ. 9

रूप में प्रचलित है। भारतीय दर्शनशास्त्र का इतिहास लिखनेवाले कुछ प्रमुख विद्वान् यदुनाथ सिन्हा,¹ दासगुप्त,² कविराज,³ मिश्र⁴ आदि विद्वानों के मत भी इसी निष्कर्ष को पुष्टि में सहायक हैं कि प्रत्यभिज्ञादर्शन काश्मीरशैवदर्शन का प्रतिनिधित्व करता है।

. ख. काश्मीरशैवदर्शन एवं आगम :

इस दर्शन का मूलाधार साहित्य है-आगम और तन्त्र साहित्य। काश्मीरो-शैवदर्शन-आगमों को अपना प्रमाणशास्त्र मानता है।

हिन्दू धर्म शास्त्रों को चार भागों में विभक्त किया जाता है- श्रुति, स्मृति, पुराण एवं तन्त्र। आगमशास्त्र तन्त्रों का एक भाग है। सम्पूर्ण शैवदर्शन की मान्यताओं का मूल आधार तन्त्र एवं आगम हैं। वेदों की भाँति इन्हें अपौरुषेय माना जाता है। हमारे यहाँ ज्ञान के विकास को दो प्रमाणिक धारारें प्रचलित हैं- एक वेद दूसरा तन्त्र। एक को स्वयंभू कहते हैं दूसरे को आगम।

जिन शैवागमों के आधार पर इस दर्शन का विकास हुआ उनकी रचना कब हुई-यह कह सकना कठिन है। यह सम्प्रदाय इन्हें अनादि कहता है। यह परावाक् रूप हैं। इनकी उत्पत्ति का प्रश्न ही नहीं उठता स्वेच्छा से इनका प्रकाशन आच्छादन एवं पुनः प्रकाशन सम्भव है।

आगम शब्द का अर्थ होता है- 'आसमन्तात्भावेन गमपतिति आगमः' अर्थात् वह विधि जो हमें पूर्ण रूप से ले जाती है, वह आगम है। ले जाने से तात्पर्य उस गन्तव्य बिन्दु से है जहाँ समस्त भेद एवं जड़ता समाप्त हो जाती है।

आगम का दूसरा अर्थ आने से भी होता है। आने की क्रिया की संगति भी इसलिए उचित है क्योंकि यह ज्ञान परमविश्वस्त शिव से आया है इसलिए आगम

1. A History of Indian Philosophy, P. 11, P. 737

2. A History of Indian Philosophy, P. 15

3. भारतीय संस्कृति और साधना, प्रथम खण्ड, पृ. 1

4. भारतीय दर्शन, पृ. 380

है :

आगतं शिववक्त्रा जात गतं च गिरजा मुखे।

मतं च वासुदेवस्य तस्मादागम उच्यते॥

अर्थात् 'अ' से शिव के मुखकमल से आना 'ग' से गौरी के मुख से जाना और 'म' से वासुदेव के मत से सम्मत होना सूचित होता है।

वाचस्पतिमिश्र के अनुसार जिससे अभ्युदय और निःश्रेयस के उपाय हमारी बुद्धि में आते हैं वह आगम है : 'आगच्छन्दि बुद्धिमारोहन्ति यस्मादभ्युदय निःश्रेयसोपायाः स आगमः।' आगम को परिभाषायें भिन्न-भिन्न हैं इन सब में कोई पारमार्थिक अन्तर नहीं है।¹

शैवदर्शन अपने आगमों को अपौरुषेय मानता है। अभिनवगुप्त ने मालिनो विजय-वार्तिक में आगमों को उत्पत्ति एवं स्वरूप का दार्शनिक निरूपण प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार त्रिकशास्त्र द्वारा प्रतिपादित वृष्टि अथवा आभासन दो प्रकार का है :

1. वाच्य रूप

2. वाचक रूप

वाक् को भी दो भागों में विभक्त किया है। देवो वाक् तथा पौरुषेय वाक् परावाक्, अपरावाक् शैवागम परावाक् है। इसी कारण व्यक्तिगत विमर्श जो कि सामान्य मानव को वाणी के कारण है के विपरीत वे परम विमर्श के सूक्ष्मभिव्यक्तिकरण हैं। वाक् पराशक्ति से तदात्म्य को स्थिति में नित्य होता है। चूँकि आगम परावाक् है अतएव वह भी नित्य है।

त्रिकशास्त्रानुसार शैवागमों की उत्पत्ति नहीं होती अपितु उनका आभासन और पुनराभासन होता है। अद्वैत प्रधान शैवदर्शन या त्रिकदर्शनाका प्रवर्तन काश्मीर में आठवीं शताब्दी से माना जाता है। किन्तु जिन आगमों तथा गुरु परम्परा के आधार पर इस दर्शन का निर्माण हुआ वह बहुत प्राचीन है।

आचार्य सोमानन्द ने अपने ग्रन्थ शिववृष्टि §7.107.113§ के अन्त में शैवदर्शन के इतिहास और परम्परा को प्रस्तुत किया है। सोमानन्द के अनुसार भगवान्

1. कालिदास के नाम पर प्रचलित चिदगगनचन्द्रिका ग्रन्थ का समीक्षात्मक अध्ययन,

श्रीकण्ठनाथ तथा महर्षि द्वर्वासा के अनुग्रह से कलियुग में शैवागमों का प्रादुर्भाव हुआ है। अगस्त्य, दत्तात्रेय, द्वर्वासा, परशुराम आदि तान्त्रिक रहस्यविद्या के आचार्य माने गए हैं। तन्त्रालोक¹ के अनुसार ब्रह्मा, शुक्राचार्य, बृहस्पति इन्द्रादि इसी विद्या के उपासक हैं। विज्ञानभैरव² के अनुसार शैवागमों की उत्पत्ति शिव से हुई है। शिव ने ही श्रीकण्ठनाथ के रूप में शैवागमों का ज्ञान ऋषियों को प्रदान किया था। इन ऋषियों की एक दीर्घ शिष्य परम्परा प्राप्त होती है।

शैवगम विभिन्न सम्प्रदायों में बँट गये हैं। काश्मीरशैवदर्शन को त्रिकुसम्प्रदाय के आगमों से सम्बद्ध माना जाता है। अतः काश्मीरशैवदर्शन को त्रिक भी कहा जाता है। प्रमुख उपलब्ध त्रिकागम इस प्रकार हैं- मालिनीविजयोत्तर, स्वच्छन्दतन्त्र, रुद्रयामल, नेत्रतन्त्र, मृगेन्द्रतन्त्र विज्ञानभैरव, परात्रिंशिका और शिवसूत्र। काश्मीरशैवदर्शन के आधारभूत 64 आगम माने जाते हैं, वर्तमान काल में सभी आगम उपलब्ध नहीं हैं इनमें से कुछ का तो मात्र नाम ही प्राप्त होता है। जैसे- नैश्वासतन्त्र, आनन्दभैरव, उच्छुद्धमयैव इत्यादि।

काश्मीरशैवदर्शन तान्त्रिक एवं आगमिक दर्शन ही है क्योंकि इस दर्शन की पृष्ठभूमि में तान्त्रिक और आगमिक धारणाओं के बोझ हैं। काश्मीरशैवदर्शन के आविर्भाव से पूर्व उत्तर भारत में तन्त्र एवं आगमों का प्रचार प्रसार रहा है। अतः काश्मीर में आविर्भूत दर्शन का इससे प्रभावित होना स्वाभाविक है। काश्मीरशैवदर्शन के साहित्य से प्राप्त अन्तर्साक्ष्य भी इसी तथ्य को पुष्टि करते हैं। काश्मीरशैवदर्शन के दार्शनिक टोकाकार, इस दर्शन को तान्त्रिक अथवा आगमिक दर्शन कहते हैं। वे अपनी रचनाओं में तन्त्र और आगमों के प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। तन्त्रशास्त्र का अपरनाम रहस्यशास्त्र भी है और इस दर्शन को 'महारहस्यशास्त्र' भी कहा गया है। 'महारहस्येषु न सर्वेषामधिकारः'³। काश्मीरशैवदर्शन की सिद्धा, नामक और मालिनी तन्त्रों की

1. तन्त्रालोक : 36.1-5

2. विज्ञानभैरव, 6, पृ. 7

3. भास्करो : 1, पृ. 15

अपनी मान्यताओं का आधार मानने के कारण त्रिकदर्शन कहा जाता है।

तत्त्व § त्रिकशास्त्र § सिद्धानामकमालिन्याख्यखण्ड त्रपात्यकत्वात्रिविधम्¹

काश्मीरशैवदर्शन के मोक्षोपायों में तान्त्रिक उपासनाओं का समन्वय पाया जाता है। इस दर्शन के दार्शनिक अभिनवगुप्त एक सिद्ध तान्त्रिक थे। अभिनवगुप्त ने अनेक तन्त्र सम्बन्धी रचनाएँ लिखीं।

शैवदर्शन के समस्त दार्शनिक तत्त्वों को आगमों में नहीं खोजा जा सकता।² तन्त्र और आगमों दोनों में ही दर्शन के तत्त्वों को अल्पता है। इनका झुकाव दर्शन को अपेक्षा शैवधर्म एवं उपासक को सूक्ष्मताओं को ओर अधिक है। तथापि अधिकांश आगमों में विद्यापाद नामक स्वतन्त्र भाग हैं, जिसमें शैवमत के दार्शनिक दृष्टिकोण पर प्रकाश डाला गया है। काशैव को मान्यताओं को पृष्ठभूमि को इति तन्त्र एवं आगम के साथ ही नहीं हो जातो। काशैव का अद्वयवाद तान्त्रिक अद्वैतवाद से अधिक पूर्ण है क्योंकि इसमें तन्त्रागम के अतिरिक्त शैवधर्म, शैवदर्शन, वेद उपनिषद् तथा अन्य भारतीय धर्म एवं दर्शनों को समस्त शाखाओं के विचारों से निःसंकोच प्रेरणा एवं प्रभाव लिया गया है।

भारतीय तान्त्रिक साहित्य का तत्त्वान्वेषण आज भी शोध का विषय बना हुआ है। तन्त्रोत्तर धर्म एवं दर्शन के विकास में तन्त्रों के योगदान का मूल्यांकन अद्यावधि भी नहीं हो पाया है। आगम परम्परा से विकसित दर्शनों के तत्त्वों में अन्य दर्शनों के जिस प्रभाव साम्य को बात कही जातो है वह तन्त्रों की विशेषता है। एन. के. ब्रह्म³ के अनुसार तन्त्रों में साधना का एक नया स्वरूप पाया जाता है, जिसमें वेदों का कर्म, उपनिषदों का ज्ञान तथा पुराणों और महाकाव्यों की भक्ति का समावेश है। कुण्ड⁴ के विचार में भी तन्त्र भारतीय संस्कृति और प्रज्ञा के विश्वकोष हैं।

1. तंत्रालोक : भाग 1, पृ. 49

2. बौद्ध वेदान्त एवं काश्मीर शैवदर्शन, पृ. 5-7

3. Tantra, in fact, enunciates a new form of sadhna or technique in which we find the Karma of the Vedas, the Jnana of the upnisads and the Bhakti of the Puranas and the great epic.

Philosophy of Hindu Sadhna, P. 274

4. ND SSP, L.N. Kundu, P.1-2

हैं।

• ग० प्रत्यभिज्ञा :

प्रत्यभिज्ञा शब्द प्रति + अभि + ज्ञा से बना है। प्रति का अर्थ अभिमुख रूप से अर्थात् आमने-सामने, ज्ञा का अर्थ है ज्ञान या प्रकाश। ज्ञात होने पर भी विस्मृत तत्त्व का अभिमुख रूप से ज्ञान या प्रकाश प्रत्यभिज्ञा है।

अभिनवगुप्त¹ ईश्वरप्रत्यभिज्ञा विमर्शिनी में प्रत्यभिज्ञा की विशद व्याख्या प्रस्तुत करते हैं :

‘प्रतीपात्माभिमुख्येन ज्ञानं प्रकाशः प्रत्यभिज्ञा। प्रतीपम इति स्वात्मावभासो हि न अनुभूत पूर्वोऽपि विच्छिन्न प्रकाशत्वात् तस्य, स तु तच्छक्त्यैव विच्छिन्न इव लक्ष्यते- इति वक्ष्यते। प्रत्यभिज्ञा च भातभासमानरूपानुसन्धानात्मिका, सा एवायं चैत्र इति प्रतिसंधानेन अभिमुखोभूते वस्तुनि ज्ञानम् लोकेऽपि सतत्पुत्र एवंगुण स्वरूपक इत्येवं वा अन्ततोऽपि सामान्यात्मना वा ज्ञातस्य पुनरभिमुखोभावावसरे प्रतिसंधित-प्राणितमेव ज्ञानं प्रत्यभिज्ञा इति व्यवहियते, नृपतिं प्रति प्रत्याभिज्ञापितोऽयम् इत्यादौ। इहापि प्रसिद्ध पुराणा सिद्धान्तागमानुमानादि विदितपूर्ण शक्ति स्वभावे ईश्वरे, सति स्वात्मन्यभिमुखोभूते तत्प्रतिसंधानेन ज्ञानम् उदेति, नूनं स एव ईश्वरोऽहम्-इति।”

न्यायकोश के अनुसार- अतोतावस्थावच्छिन्न वस्तु ग्रहणम् अर्थात्-पूर्वज्ञातावस्था से विशिष्ट वस्तु का अनुभव हो प्रत्यभिज्ञा है।

माधवाचार्य² ने प्रत्यभिज्ञा के तीन अर्थ बताये हैं।

1. ब्राह्मण्यन्तर ज्ञान सुखादि समस्त सम्पत्तियों को सिद्धि तथा तत्त्वप्रकाश और उसको पूर्ण प्राप्ति जिस प्रत्यभिज्ञा से हो, ऐसे महेश्वर को प्रतिमा के अभिमुख ज्ञान का नाम प्रत्यभिज्ञा है।

2. प्रत्यभिज्ञा का एक लौकिक व्यवहार भी देखने में आता है। उदाहरण के लिए लोक व्यवहार में ‘सो यं चैत्रः’ {यह वही चैत्र है} इत्यादि स्थलों में अभिमुख वस्तुविषय के जो ज्ञान हैं उन्हें प्रत्यभिज्ञा कहते हैं।

1. ईश्वरप्रत्यभिज्ञा विमर्शिनी, 19-21

2. माधवाचार्य : सर्वदर्शनसंग्रह, प्रत्यभिज्ञा दर्शनम् ।

3. तीसरे प्रकार को प्रत्यभिज्ञा, दर्शन से सम्बन्धित है। प्रत्यभिज्ञादर्शन के अन्तर्गत पुराण, आगम एवं अनुमानादि से ज्ञात तथा परिपूर्ण शक्तिमान् परमेश्वर के अभिमुख होने पर, स्वकोय आत्मा के विषय में, अनुसन्धान द्वारा मैं वही परमेश्वर हूँ। इस प्रकार का जो ज्ञान उदित होता है उसे प्रत्यभिज्ञा कहते हैं।

प्रत्यभिज्ञा दर्शनानुसार जोव जो स्वरूपतः परमेश्वर शिव का रूप है, अज्ञान के कारण अपने स्वरूप को पहचानने में असमर्थ रहता है। जिस प्रकार कोई नायिका प्रेमी नायक के गुणों को सुन, उसपर आसक्त एवं कामातुर होकर विरह-पीड़ा को सहने में असमर्थ हो, मदनलेखा के आलम्बन से अपनी विरह विदोर्ण अवस्था का निवेदन करती है तथा वेगपूर्वक नायक के पास पहुँचकर उसका अवलोकन करने पर भी पूर्व अपरिचित एवं जनसाधारण के समान होने के कारण अपने भावों को व्यक्त नहीं कर सकती। परन्तु कितो के द्वारा यह विदित होने पर कि तुम्हारा प्रिय पुरुष यही है, अपने हृदयगत भावों को स्पष्ट कर देती है, उसी प्रकार स्वात्मा में विश्वेश्वरात्मा भासित होने पर भी विश्वेश्वरात्मा का प्रकाश गुण परामर्श के बिना पूर्णतः का सम्पादन नहीं करता। परन्तु जब गुण-वचनादि से सर्वज्ञत्व सर्वकर्तृत्व आदि रूप परमेश्वर के उत्कर्ष का ज्ञान हो जाता है, तो जोवात्मा पूर्णतया आत्मस्वरूप को प्राप्त हो जाता है।

• घ. प्रत्यभिज्ञादर्शन का साहित्य एवं साहित्यकार :

त्रिक दर्शन के आधारभूत शास्त्रों का तीन शाखाओं में विभाजन किया जाता है- १११ आगमशास्त्र, १२१ स्पन्दशास्त्र, १३१ तथा प्रत्यभिज्ञाशास्त्र।

1. आगम साहित्य :

शैव दर्शन के आधारभूत 64 आगम माने जाते हैं। जयरथ¹ ने तन्त्रालोक में टीका में द्वैतवादो धारा के 64 तन्त्रों के साथ ही 10 द्वैतवादो धारा के तथा 18 द्वैताद्वैतवादो धारा के तन्त्रों का नाम पूर्वक उल्लेख किया है। सम्प्रति इन धाराओं का साहित्य उपलब्ध नहीं है। जो आगम या तन्त्र ग्रन्थ आज प्राप्त हैं उनकी टीका

या व्याख्याएँ अद्वैत दृष्टि से की गई हैं। परिणामतः काश्मीरशैवदर्शन का उपलब्ध साहित्य अद्वैतवादी विचारधारा का ही कहा जाता है। कुछ प्रमुख आगम इस प्रकार हैं।

1. मालिनो विजयोत्तरतन्त्र :

इसमें तेईस अधिकांश अध्याय हैं। मालिनो विजयोत्तरतन्त्र को प्रारम्भिक कारिकाओं से ऐसा प्रतीत होता है कि यह सिद्धयोगेश्वरोत्तरतन्त्र का पूर्व एक भाग है। मधुसूदन कौल के अनुसार सिद्धयोगेश्वरोत्तरतन्त्र का पूर्व भाग सिद्धामत तथा अन्तिम भाग मालिनो विजयोत्तरतन्त्र है। वर्णमाला के माला शब्द से इसका नाम मालिनो पड़ा। वर्ण विज्ञान के क्रय विचार से इसके दो नाम प्रसिद्ध हैं— पूर्व मालिनो और उत्तर-मालिनो। अभिनवगुप्त ने तन्त्रालोक में मालिनो विजयोत्तर तन्त्र का श्रीपूर्वशास्त्र¹ के नाम से भी उल्लेख किया है। तन्त्रालोक में मालिनो विजयोत्तरतन्त्र के अधरशः उद्धरण भी प्राप्त होते हैं।²

2. स्वच्छन्दतन्त्र :

स्वच्छन्दतन्त्र छह खण्डों में विभक्त है। इसमें पन्द्रह पटल अध्याय हैं। स्वच्छन्दतन्त्र अद्वैततन्त्रों में प्रधान, सभी प्रकार के भोग एवं मोक्ष को प्रदान करनेवाला तथा तात्त्विक रूप से गुह्य है।³ स्वच्छन्दतन्त्र की शैली संवादात्मक है इसकी रचना भैरव एवं देवी के बीच हुए संवाद के रूप में हुई है।⁴ डॉ. पाण्डेय⁵ के मत में इसका समय द्वितीय शती से पूर्व नहीं हो सकता। इस तन्त्र पर आचार्य धम्मराज की उद्योत

1. तन्त्रालोक : 4, 15-16, 35, 46

2. 4. 213-21 :

तथा— आनन्द उद्धवः कम्प्यो निन्द्रा घूर्णिष्य पंचकम्

इत्युक्तमत एव श्रीमालिनी विजयोत्तरे ।

—तन्त्रालोक, 5. 107

3. स्वच्छन्दतन्त्र उद्योत : 8. 39

4. स्वच्छन्दतन्त्र, 1. 4-12

5. अभिनवगुप्त : पृ. 572

टोका प्राप्त होता है।¹ भाषा एवं विषय को दृष्टि से यह तन्त्र तन्त्रालोक की अपेक्षा अधिक स्पष्ट है। तन्त्रालोक के छठे आदिनक की विषय-वस्तु इस आगम पर आधारित है तथा जयरथ ने भी इस आदिनक की व्याख्या में स्वच्छन्दतन्त्र के उद्धरण दिये हैं। अभिनवगुप्त² ने स्वच्छन्दशास्त्र के नाम से इसके अभिप्राय का अनेकशः उल्लेख किया है। स्वच्छन्दतन्त्र में पौराणिक शैली में नदियों, भूभागों, पर्वतों, द्वीपों आदि का भी उल्लेख प्राप्त होता है।

3. रुद्रयामलतन्त्र :

यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तन्त्र है। यह तन्त्र अभी तक उपलब्ध नहीं हो पाया है। विज्ञानभैरव, परात्रिशिक भवानोसहस्र आदि अनेक आगम ग्रन्थ इसी के खण्ड माने जाते हैं। रुद्रयामलतन्त्र का उल्लेख अभिनव ने मालिनो विजयवार्तिक में किया है।³ रुद्रयामल का सार परात्रिशिका में पद्यबद्ध रूप में प्रस्तुत किया गया है।⁴

4. परात्रिशिका :

यह रुद्रयामल तन्त्र का अन्तिम भाग माना गया है। इसको त्रिकसूत्र, त्रिकागम तथा अनुत्तरसूत्र भी कहते हैं। तन्त्रालोक के अनुसार इस पर सोमानन्द, भवभूति, कल्याण ने टीकाएँ लिखीं। इस पर अभिनव गुप्त, लक्ष्मोराम, लासक आदि की भी टीकाएँ उपलब्ध होती हैं।

1. अभिनवगुप्त, पृ. 572

2. तन्त्रालोक : 4. 38, 6. 50, 136-38

‘उक्तं स्वच्छन्दशास्त्रे तत् वैष्णवाद्यान्यवादिनः।’

-तन्त्रालोक, 4. 38, पृ. 42

3. मालिनो विजयवार्तिक : पृ. 38

4. अभिनवगुप्त : पृ. 44-45

5. श्रीसोमानन्दकल्याण भवभूतिपुरोगमाः।

तथा हि त्रिशिकाशास्त्रविवृतौ ते भवभूतिव्याख्याः॥

-तन्त्रालोक : 13-149

6. अभिनवगुप्त, पृ. 45

5. नेत्रतन्त्र :

इसमें मृत्युजित् के स्वरूप तथा साधना का उपदेश है। कहा जाता है कि यह द्वैतपरक था जिसको धेमराज ने अद्वैतपरक व्याख्या की है। शिव के तृतीय प्रातिम नेत्र का स्वरूप वर्णन होने के कारण, तथा मुक्ति तक ले जाने के कारण और संसार के त्राण के कारण इसे नेत्रतन्त्र कहा गया है।¹

6. मृगेन्द्रतन्त्र :

मृगेन्द्रतन्त्र के द्वैतप्रधान होने के कारण इसको गणना काश्मीरशैवाग्रमों में कम ही की जाती है। अभिनवगुप्त ने इसके मूल कामिकाग्रम² का अनेक उपयोग किया है। तथा इस पर श्रीमदनारायण कण्ठ को अद्वैत प्रधान व्याख्या प्राप्त होने से इसे भी शैवदर्शन का आधारभूत आग्रम माना जाता है। मृगेन्द्रतन्त्र कामिकाग्रम का संक्षेप है इसमें विद्या, क्रिया, चर्या, योग यह चार पाद हैं।

7. विज्ञानभैरव :

विज्ञानभैरव का उद्भव भी देवी भैरव के बीच हुए संवाद के रूप में हुआ है। इस ग्रन्थ में परमतत्त्व के स्वरूप निरूपण के पश्चात् उसको प्राप्त करने के उपायों के रूप में 112 धारणाओं में 161 अथवा 163 कारिकाओं का ही मूल ग्रन्थ स्वीकार किया गया है।

विज्ञानभैरव पर 24वीं कारिका तक आचार्य धेमराज ने विवृति लिखी है। तथा 25वीं कारिका से अन्त तक शिवोपाध्याय ने उद्योत नामक विवृति लिखी है। सम्पूर्ण विज्ञानभैरव पर आनन्द भट्ट ने कौमुदी टीका लिखी है।

8. शिवसूत्र :

आठवीं शती के अन्त³ अथवा नवीं शती के प्रारम्भ⁴ में वसुगुप्त ने शिवसूत्रों

1. नेत्रतन्त्र : 22. 12

2. तन्त्रालोक : 4. 26-27, 6. 90-91

3. डॉ. सूर्यवंशी; शैवमत, पृ. 170

4. डॉ. चटर्जी : काश्मीरशैविज्म, पृ. 36

की रचना की। इसमें अद्वैतवादी शैवदर्शन की रूपरेखा निरूपित है। वसुगुप्त को भगवान् शिव ने स्वप्न में शिवसूत्र का उपदेश दिया था। वसुगुप्त के शिष्य कल्लट के अनुसार महादेवगिरि नामक पहाड़ी पर भगवान् महेश से वसुगुप्त ने इन सूत्रों को स्वप्न में प्राप्त किया था।¹ क्षेमराज ने भी स्पन्दनिर्णय में यही विचार व्यक्त किया है कि वसुगुप्त ने इन सूत्रों को स्वयं शिव से प्राप्त किया।² भास्कराचार्य ने शिवसूत्रवार्तिक के उपोद्घात में लिखा है कि वसुगुप्त को किसो सिद्ध के आदेश से महादेव पर्वत पर शिवसूत्र मिले थे।³ शैवदर्शन की अद्वैतवादी धारा के मूलधार यह शिवसूत्र ही हैं। शिवसूत्र तीन अध्यायों में विभक्त है। जिनमें क्रमशः आणवोपाय, शक्तोपाय तथा शम्भवोपाय का उनके प्रयोग तथा फल सहित विवेचन किया गया है। शिवसूत्र त्रिक साधना का प्रमुख ग्रन्थ है। क्षेमराज ने शिवसूत्रों पर शिवसूत्रविमर्शिनी नामक टीका लिखी है तथा भट्टभास्कर ने शिवसूत्रों पर वार्तिक लिखी।

2. स्पन्दशाखा और प्रत्यभिज्ञा शाखा का साहित्य एवं साहित्यकार :

स्पन्दशास्त्र और प्रत्यभिज्ञाशास्त्र के साहित्य का पृथक्-पृथक् विवेचन न करके रचनाकारों के कालक्रमानुसार इन दोनों शाखाओं का साहित्य प्रस्तुत किया जा रहा है। मूलतः यह दोनों अलग-अलग नहीं है तर्कवादी दृष्टियों इनमें भिन्नताओं की स्थापना करती है। इन दोनों शाखाओं के साहित्यकार एक ही हैं।

1. कल्लटकृत स्पन्दवृत्ति,

2. इह हि विश्वानुजिघृक्षापरकरमशिवावेशोन्मीलितमहिमा स्वप्नोपलब्धोपदेशः

श्रीमानवसुगुप्ताचार्यो महादेवपर्वतादभगवदिच्छयैव महाशिलातलो ल्लिखितान्यतिर-
हस्यानि शिवसूत्राण्यासाद्य प्रसन्नगम्भोरैरेकपंचाशताश्लैकैरगमानुभवोपपन्त्येकोकारं
प्रदर्शयन्संगृह्यतवान्।

स्पन्द-निर्णय, पृ. 2

3. श्रीमन्महादेवगिरौ वसुगुप्तगुरोः पुरा।

सिद्धादेशात्प्रादुरासन् शिवसूत्राणि तस्य हि॥

शिवसूत्रवार्तिक : उपोद्घात

आचार्य वसुगुप्त :

वसुगुप्त ने ही शैवमत को अद्वैतवादो रूप दिया है। इनकी प्रमुख रचनायें इस प्रकार हैं।

1. शिवसूत्र :

यह वसुगुप्त की प्रमुख रचना है। वस्तुतः यह 77 शिवसूत्र ही इस दर्शन के मूल हैं। शिवसूत्र तीन खण्डों में विभक्त हैं। वसुगुप्त की अन्य रचनायें हैं :

2. स्पन्दकारिका :

धेमराज ¹ इसे वसुगुप्त कृत मानते हैं पर उत्पलवैष्णव ² तथा अन्य कतिपय लोगों के उल्लेख के आधार पर यह वसुगुप्त के शिष्य कल्लट को कृति प्रतीत होती है।

3. स्पन्दामृत :

स्पन्दामृत के सम्बन्ध में डॉ. के.सो. पाण्डेय ³ का अभिमत है कि यह रचना स्पन्दकारिका से भिन्न नहीं है। स्पन्दामृत अलंकारिक रूप से प्रयुक्त हुआ है।

4. गोता को वासवो टीका :

ऐसा माना जाता है कि सोमानन्द ने गोता पर वासवो नामक टीका लिखी थी जो अनुपलब्ध है। ⁴

5. सिद्धान्त चन्द्रिका :

यह भी वसुगुप्त की रचना मानी जाती है।

सोमानन्द :

इनका समय नवौं शताब्दी का उत्तरार्द्ध है। सोमानन्द की प्रत्यभिज्ञा शाखा के प्रवर्तन का सौभाग्य प्राप्त है। उन्हें तर्कस्य कर्तारः कहा गया है। सोमानन्द की प्रमुख रचना है ;

1. स्पन्दनिर्णय, 4.2

2. स्पन्दप्रदीपिका, 53

3. अभिनवगुप्त, पृ. 92

4. काश्मीर शैविज्य, पृ. 27-8

1. शिव-दृष्टि :

शिव दृष्टि में सात आदिष्क हैं तथा इन सात आदिष्को में 700कारिकार्ये हैं। शिवदृष्टि में दृष्टि शब्द दर्शन का वाचक है। इसमें रुद्रिवाद की अपेक्षा तर्कवाद की प्रधानता दी गई है,

“शिव दृष्टि दार्शनिक दृष्टि से परवर्ती प्रत्यभिज्ञादर्शन का मेरुदण्ड है।¹ सोमानन्द की अन्य रचना पारत्रोशिका पर टोका है। अभिनवगुप्त के अनुसार सोमानन्द ने पारत्रोशिका पर टोका लिखी थी।”²

कल्लट :

कल्लट के सम्बन्ध में जानकारी कल्हण कृत राजतरंगिणी से प्राप्त होती है।³ इनकी रचनाएँ इस प्रकार हैं :

1. स्पन्दकारिका : स्पन्दसूत्र :

इनका वास्तविक लेखक, वसुगुप्त और भट्टकल्लट में से कौन है, यह इस पर मतभेद है। कुछ आचार्यों के विचार से मूलसूत्रों की रचना स्वयं सिद्धवसुगुप्त ने की थी। और श्री भट्टकल्लट ने गुरु को सूत्रात्मक भाषा का आशय समझने हेतु उस पर वृत्ति लिखी है। इसके प्रतिकूल कई आचार्यों का मत यह है कि मूलसूत्रों की रचना श्रीभट्टकल्लट ने की है और अपनी ही भाषा का अभिप्राय स्पष्ट करने के लिए उस पर स्वयं ही वृत्ति भी लिखी। उत्पल⁴ का भी यही मत है।:

2. स्पन्दसर्वस्व :

यह स्पन्दकारिका को टोका है।

1. परमार्थसार भूमिका, कमलाद्विवेदी, पृ. 29

2. पारत्रोशिका विवरण, पृ. 282, का. 19

3. अनुग्रहाय लोकानां भट्टश्रीकल्लटादयः ।
अवन्तिवर्मणः काले सिद्धाभुवमवात्स्रः ॥

राजतरंगिणी : 5.66

4. वसुगुप्तादवाप्येदं गुरोस्तत्त्वार्थदर्शिनिः ।

रहस्यं श्लोकायामास सम्यक् श्री भट्टकल्लटः ॥

स्पन्दप्रदीपिका, 53

3. तत्त्वार्थचिन्तामणि :

यह भी टीकाग्रन्थ है।

भास्कराचार्य¹ के अनुसार वसुगुप्त को किसी सिद्ध के आदेश से शिवसूत्र मिले थे। उन्होंने वे सूत्र और उनका रहस्य श्री भट्टकल्लट को दे दिया था। यह सूत्र चार खण्डों में विभक्त थे। श्री कल्लट ने इनमें से पहले तीन खण्डों की व्याख्या अपने स्पन्द सूत्रों में और अन्तिम खण्ड की व्याख्या अपनी तत्त्वार्थचिन्तामणि में की है। भास्कर को इस मान्यता का आधार किया है। इसका उल्लेख न उत्पलवैष्णव करते हैं और न ही श्री भास्कर ने किया है।

उत्पलदेव :

त्रालोक² के अनुसार उत्पल सोमानन्द के पुत्र भी थे और शिष्य भी। ईश्वरप्रत्यभिज्ञा³ से प्राप्त विवरण अनुसार उत्पलदेव सोमानन्द के प्रमुख शिष्य थे। इनके पिता का नाम उदयाकर तथा माता का नाम वागीश्वरी था। इनका काल नवम शताब्दी का अन्तिम भाग है। उत्पलदेव की प्रमुख रचनायें यह हैं :

1. ईश्वरप्रत्यभिज्ञा :

उत्पलदेव की प्रसिद्ध कृति ईश्वरप्रत्यभिज्ञा है। इसमें चार प्रकरणा हैं। यह प्रत्यभिज्ञा दर्शन का प्रमुख ग्रन्थ है। सोमानन्द की शिवदृष्टि और उत्पलदेव की ईश्वरप्रत्यभिज्ञा का प्रतिपाद्य एक ही माना जाता है। कहा जाता है कि इसमें नाम, आकार, शैली का भेद है, प्रतिपाद्य का नहीं। अभिनवगुप्त भी ईश्वर प्रत्यभिज्ञा को

1. श्री मन्महादेवगिरौ वसुगुप्तगुरोः पुरा।

सिद्धादेशात्प्राद्वरासन् शिवसूत्राणि तस्य हि॥

सरहस्यान्यतः सोऽपि प्रदाद्वदताय सूरये।

श्रीकल्लटाय सोऽप्येवं चतुःखण्डानि तान्यथ॥

व्याकरो त्मिकमेतेभ्यः स्पन्दसूत्रैः स्वकैस्ततः।

तत्त्वार्थचिन्तामण्याख्यटीकया खण्डमन्तिमम्॥

—शिवसूत्रवार्तिक उपोद्घात

2. सोमानन्दात्मजोत्पललक्ष्मणगुप्त नाथः त्रालोक, 37

3. श्री सोमानन्दग्रन्थस्य विज्ञान प्रतिबिम्बकम्।

ईश्वरप्रत्यभिज्ञा 1-2

सोमानन्द की प्रज्ञा का प्रतिबिम्ब मानते हैं। उत्पलदेव के अन्य ग्रन्थ हैं :

2. ईश्वरप्रत्यभिज्ञा विवृति :

यह उत्पलदेव की स्वयं की ईश्वरप्रत्यभिज्ञा पर एक लघु टीका है।

3. ईश्वरप्रत्यभिज्ञा विवृति :

यह ग्रन्थ अपने मूल रूप में प्राप्त नहीं होता इस पर अभिनवगुप्त की विस्तृत टीका, जिसका नाम बृहतो विमर्शिनी है, प्राप्त होती है।

4. अजड प्रमातृ सिद्धि।

5. ईश्वर सिद्धि।

6. सम्बन्ध सिद्धि।

उत्पल ने इन संक्षिप्त ग्रन्थों का निर्माण ईश्वर प्रत्यभिज्ञा के सहायक ग्रन्थों के रूप में किया था।

7. शिवस्तोत्रावली :

शिव की स्तुति में रचित पद्यों का संग्रह है। इन पद्यों में लालित्य के साथ-साथ दार्शनिकता का भी समावेश है।

8. शिव दृष्टि की वृत्ति :

उत्पलदेव ने शिवदृष्टि पर वृत्ति भी लिखी थी जो अब केवल 1-4 आह्निकों पर उपलब्ध होती है।

अभिनवगुप्त :

प्रत्यभिज्ञादर्शन के दार्शनिक स्वरूप को उद्घाटित करने का श्रेय अभिनवगुप्त को है। अभिनवगुप्त के ग्रन्थों को दो भागों में बाँटा जा सकता है :

क. मौलिक ग्रन्थ

ख. टीका ग्रन्थ

मौलिक ग्रन्थ :

अभिनवगुप्त के मौलिक ग्रन्थ निम्नलिखित हैं :

1. तन्त्रालोक :

यह विशालकाय ग्रन्थ अभिनवगुप्त को मौलिक कृतियों में सब से महत्वपूर्ण है। इसमें शैव आचार, साधना, योग, तान्त्रिक कर्मकाण्डों का वर्णन है।

2. तन्त्रसार :

अभिधानानुसार यह ग्रन्थ तन्त्रालोक के प्रमुख विषयों को सार रूप में प्रस्तुत करता है।

3. मालिनो विजयवार्तिक :

इस ग्रन्थ में शैवयोग, भक्ति साधना, आदि विषयों को तार्किकता के आधार पर प्रस्तुत किया गया है। अभिनवगुप्त ने सरल भाषा में शैवदर्शन सम्बन्धी कुछ छोटी-छोटी रचनायें भी लिखीं :

1. बोधपंचदशिका :

इसमें कुल 16 पद्य हैं, जिनमें सृष्टि कारणवाद, बंधन एवं मोक्ष का सरल भाषा में वर्णन है।

2. परमार्थ सार :

इसमें 105 कारिकाएँ हैं।

3. परमार्थचर्चा :

यह एक लघु पुस्तक है इसमें परमतत्त्व का स्वरूप एवं सांसारिक कार्य करते हुए उसके ताक्षात्कार का उपाय बताया गया है।

अभिनवगुप्त ने शिव एवं शक्ति को स्तुति में अनेक स्त्रोत लिखे। प्रमुख स्त्रोत निम्नांकित हैं।

1. क्रमस्तोत्र

2. भैरवस्तोत्र

3. अनुत्तराष्टिका

4. अनुभवनिवेदनस्तोत्र

5. देहस्थदेवताचक्रस्तोत्र

6. अभिनवगुप्त के टीका ग्रन्थ :

1. ईश्वरप्रत्यभिज्ञा विमर्शिनी § लघ्वी वृत्ति §
2. ईश्वरप्रत्यभिज्ञा विवृत्ति विमर्शिनी § बृहती वृत्ति §
3. परात्रीशिका विवरण
4. भगवद्गीतार्थसंग्रह : श्रीमद्भगवद्गीता पर यह संक्षिप्त टीका है।
5. शिवदृष्ट्यालोचन : यह सोमानन्द की शिवदृष्टि पर टीका रही होगी।
अब यह उपलब्ध नहीं है।

रामकण्ठ : स्पन्दविवरणसार :

रामकण्ठ ने स्पन्दविवरण सार ग्रन्थ लिखा। यह ग्रन्थ स्पन्दकारिका की टीका है।

क्षेमराज :

आचार्य क्षेमराज अभिनवगुप्त के शिष्य थे। अतः अभिनव के विचार दर्शन की पूरी छाप क्षेमराज के साहित्य पर पड़ी जाती है। इनका समय 11वीं शताब्दी है।
क्षेमराज के मौलिक ग्रन्थ :

1. प्रत्यभिज्ञा हृदय :

यह ग्रन्थ सूत्र तथा वृत्ति में रचित है। यह ग्रन्थ प्रत्यभिज्ञादर्शन को समझाने हेतु ज्ञानद्वार है।

2. परापूर्वेशिका :

शैवदर्शन को बालवबोधाय प्रस्तुत करने के लिए यह लघु पुस्तिका है।

क्षेमराज के टीका ग्रन्थ :

क्षेमराज द्वारा प्रणीत टीकार्यें निम्नांकित हैं :

1. शिवसूत्र विमर्शिनी
2. स्पन्दसन्दोह
3. स्पन्दनिर्णय
4. स्तवचिन्तामणि - विवृति

5. विशाल भैरव
6. नेत्रतन्त्रउद्योत
7. स्वच्छन्दतन्त्रउद्योत
8. शिवस्तोतावलोटीका
9. सोवपंचाशिका-टीका

प्रत्यभिज्ञादर्शन के परवर्ती ग्रन्थकार :

प्रत्यभिज्ञादर्शन के प्रमुख परवर्ती ग्रन्थकार निम्नलिखित हैं :

1. नारायण कण्ठ : 1100 ई. :

विद्याकण्ठ के पुत्र नारायण कण्ठ ने मृगेन्द्रतंत्र पर वृत्ति लिखी।

2. योगराज : 1075 ई. :

योगराज ने अभिनवगुप्त के प्रसिद्ध ग्रन्थ परमार्थसार पर विवृति लिखी।

3. सुभतदत्त : 1200 ई. :

सुभतदत्त ने तन्त्रालोक पर सर्वप्रथम टीका लिखकर पाठकों के लिए सुग्राह्य बनाया।

4. वरदराज :

इनका समय 11वीं शताब्दी है। शिवसूत्रवार्तिक इनकी एक मात्र कृति है।

5. जयरथ : 1225 ई. :

जयरथ ने तन्त्रालोक को विवेक नामक टीका लिखी। तथा वामकेशरीमत की भी टीका लिखी।

6. भास्कर कण्ठ :

भास्कर ने अभिनवगुप्त की प्रत्यभिज्ञा विमर्शिनो पर भास्करी नामक टीका लिखी।

7. लक्ष्मणगुप्त :

उत्पलचार्य के बाद शैवदार्शनिक परम्परा में अभिनवगुप्त के गुरु लक्ष्मणगुप्त का नाम आता है। इनका कोई दार्शनिक ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होता है, ऐसा माना जाता है कि शारदातिलक ग्रन्थ लक्ष्मण गुप्त का है।

8. महेश्वरानन्द :

महेश्वरानन्द ने महाराष्ट्रीय अपभ्रंश में महार्थमंजरी लिखी।

9. शिवोपाध्याय :

इन्होंने विज्ञानभैरव पर टीका लिखी।

10. प्रत्यभिज्ञादर्शन का अन्य दर्शनों से सम्बन्ध :

जगत् के मूल में प्रकृति तथा पुरुष के द्वैत को माननेवाला सांख्यदर्शन, समाधि के द्वारा परमतत्त्व को प्राप्त बतानेवाला योगदर्शन, परमतत्त्व, जोव तथा ईश्वरादि मौलिक तत्त्वों को माननेवाला बहुतत्त्ववादो वैशेषिक तथा प्रमाणशास्त्र को विशद व्याख्या करनेवाला न्यायदर्शन, जोवन की समस्याओं का तात्त्विक निरूपण करनेवाला दर्शन मोमांसा है। यही सभी दर्शन भारतीय दर्शन की स्वर्णशृंखला की कड़ियाँ हैं, जो नामभेद होने पर भी एक दूसरे से जुड़कर भारतीय दर्शन शृंखला का निर्माण करती हैं। प्रत्यभिज्ञादर्शन भी इस शृंखला की कड़ी है।

प्रत्यभिज्ञादर्शन का अविभावि भारतीय दर्शन के इतिहास पटल पर उस समय हुआ जब अनेक प्रमुख दर्शन अपने सिद्धान्तों को स्थिर कर चुके थे। इस स्थिति में प्रत्यभिज्ञादर्शन के दार्शनिकों को अन्य दर्शनमतों के विषय में अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करने तथा उसको आलोचना करने का अवसर सुलभ था।¹

1. प्रत्यभिज्ञादर्शन एवं सांख्यदर्शन :

शैवमत की द्वैतवादो शाखा का झुकाव इसकी ओर अधिक है क्योंकि सांख्य भी द्वैतवादो हैं। अद्वैतवादो शाखा अथवा काश्मीरशैवदर्शन की मान्यताओं पर भी इसका प्रभाव देखा जा सकता है। सांख्य के 25 तत्त्व हैं और काश्मीरशैवदर्शन के 36 तत्त्व हैं इन 36 तत्त्वों में से 25 वही तत्त्व हैं जो सांख्य के हैं। मुख्य भेद यह है कि सांख्य पुरुष प्रकृति को भिन्न मानता है और प्रत्यभिज्ञाशाखा या त्रिक पुरुष एवं प्रकृति को एक मानता है।

2. प्रत्यभिज्ञादर्शन एवं न्याय वैशेषिक :

प्राचीन शैवमतों से इस दर्शन का निकट का सम्बन्ध है। इन दर्शनों के संस्थापक

क्रमशः गौतम एवं कणाद शैव और पाशुपत थे। उत्पलाचार्य ने ईश्वरप्रत्यभिज्ञाकारिकों में §1.2.1-11§ बौद्धों के पूर्व पक्ष के रूप में इनके मतों को प्रस्तुत किया है। इन दोनों में मूल भेद यह है कि काश्मीर शैवदर्शन अद्वैत है और न्याय द्वैत।

3. प्रत्यभिज्ञादर्शन एवं मोमांसा दर्शन :

काश्मीरशैवदर्शन और मोमांसादर्शन का सम्बन्ध स्पष्ट है। काश्मीर शैवदर्शन के व्यवस्थित आरम्भ से पूर्व मोमांसा दर्शन प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुका था। मोमांसकों के समयकालीन सोमानन्द के लिए मोमांसकों के मतों से परिचित रहना स्वाभाविक है। अभिनवगुप्त ने ईश्वरप्रत्यभिज्ञा विमर्शिनी तथा सोमानन्द ने शिवदृष्टि में मोमांसा-दर्शन के मतों का खण्डन किया है।

4. प्रत्यभिज्ञादर्शन एवं चार्वाकदर्शन :

चार्वाक अथवा लोकायत दर्शन भारत का प्राचीन दर्शन है। प्रत्यभिज्ञाहृदयम् में इस दर्शन का उल्लेख है।

तदभूमिका सर्वदर्शन स्थितयः¹ ।

सर्वेषां चार्वाकादि दर्शनानां स्थितयः सिद्धान्तः तस्य मतस्य आत्मनो
नटस्येव स्वेच्छावगृह्यताः कृत्रिमा भूमिकाः तथा च चैतन्य विशिष्टं
शरीरमात्मा इति चार्वाकाः।²

चार्वाक दर्शन के मूल सूत्र के रचयिता आचार्य बृहस्पति कहे जाते हैं। इस दर्शन का कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं मिलता है और न ही इसकी कोई परम्परा उपलब्ध होती है। अभिनवगुप्त ने इस मत को बहुत दुर्बल कहा है। उनके अनुसार यह स्वमत को स्थापना में भी समर्थ नहीं है।

“लोकायतिकाः स्वपथस्थापना विहीना परमक्षमपि कथं दूषयेयुः

प्रमाणादिप्रक्रियामयदिनुप्रवेशेनतदूषणात् तदनुप्रवेशे तु चार्वाकताहानिरिति-
सौगता एव इह पूर्वपक्षबादिनः।²

1. प्रत्यभिज्ञाहृदयम् सूत्र 8

2. ईश्वरप्रत्यभिज्ञा विवृत-विमर्शिनी खण्ड 1, पृ. 112 द्वितीयविमर्श।

5. प्रत्यभिज्ञा दर्शन एवं बौद्ध दर्शन :

काश्मोर शैवदर्शन के साहित्य में बौद्ध दर्शन के सिद्धान्तों मतों का युक्तियुक्त खण्डन किया है - बौद्धमत एवं शैवमत सिद्धान्तगत और दृष्टिगत विरोध रखते हुए भी काश्मोर में साथ-साथ प्रचलित थे। धीरे-धीरे इनके परस्पर विरोध प्रबल होकर प्रकट होने लगे। शैवमत बौद्धमत का प्रतिद्वन्द्वी था। शैवाग्रमों में भी बौद्धमत के खण्डन की प्रवृत्ति पाई जाती है। शैवदार्शनिकों ने बौद्धों के परमतत्त्व सम्बन्धी विचारों की आलोचना की है। बौद्धों के तीन प्रमुख सम्प्रदाय वैमाषिक योगाचार, एवं माध्यमिक को मोक्ष प्रसंग में आलोचना की गई है।

‘त्रयाभवा दिनो माध्यमिकः।’

6. प्रत्यभिज्ञा दर्शन एवं जैनदर्शन :

प्रत्यभिज्ञादर्शन के साहित्य में जैन दर्शन को न्यूनतम चर्चा मिलती है। शिवदृष्टि में केवल दो स्थानों पर इसका अर्हत नाम से उल्लेख हुआ है। तन्त्रालोक में बौद्ध धर्म के साथ इसका नाम अर्हत नाम से उल्लेख हुआ है।¹ शैवदर्शन के दार्शनिकों का जैन दर्शन के प्रति ऐसा रवैया क्यों रहा इसके बारे में यहाँ निश्चित कुछ भी कहना कठिन है सम्भव है दार्शनिकों के इस रवैये के पीछे जैन दर्शन में उनकी अरुचि उनके सिद्धान्तों में अविश्वास अथवा अज्ञान या काश्मोर की कोई धार्मिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि हो सकती है।²

7. प्रत्यभिज्ञादर्शन एवं योगदर्शन :

योगदर्शन सर्वाधिक प्राचीन और समीचीन दर्शन है। योग शब्द को दो अर्थ हैं- मिलन और समाधि। प्रत्येक दर्शन का परमलक्ष्य ईश्वर का सांनिध्य प्राप्त करना है। अतः योगदर्शन किसी न किसी रूप में प्रत्येक दर्शन को प्रभावित करता है।

1. बौद्धार्हतायाः सर्वे ते विद्यारागेण रंजिताः ।

मायापाशेन बद्धत्वा च्छिवदोक्षां न विन्दते ॥

-तन्त्रालोक, 4.27

2. बौद्ध वेदान्त एवं काश्मोरशैवदर्शन, पृ. 36

प्रत्यभिज्ञान दर्शन भी योग दर्शन के प्रभाव से अछूता नहीं है। प्रत्यभिज्ञा के साहित्य में विभिन्न मुद्रायें जैसे भैरव मुद्रा ध्यान, समाधि इत्यादि सब योगदर्शन से ग्रहण किये गये हैं। विशालप्रसाद त्रिपाठी¹ के अनुसार विकल्प की धारणा त्रिक ने योग से ली है। विकल्प एक ऐसी वृत्ति है जो शब्दज्ञान अनुपाती तथा वस्तु शून्य होती है।²

8. उपनिषद् गोता एवं प्रत्यभिज्ञा दर्शन :

काश्मीर शैव दर्शन के साहित्य पर उपनिषदों का बहुत प्रभाव है। उदाहरण के लिए अभिज्ञान या प्रत्यभिज्ञान शब्द उपनिषदों में परंब्रह्म को जानने के लिए प्रयुक्त होता है और प्रत्यभिज्ञादर्शन में प्रत्यभिज्ञान महेश्वर के ज्ञान के लिए प्रयुक्त होता है। काश्मीर शैवदर्शन कहता है - शिवः सर्वमिति। उपनिषदों में भी यही भाव है। ब्रह्मसर्वा श्वेताश्वरुपनिषद् में ज्ञान एवं क्रिया शक्तियाँ महेश्वर में मानी गई हैं। परात्म्यशक्तिविविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञान बल क्रिया च। प्रत्यभिज्ञादर्शन में भी महेश्वर को शक्ति पंचक माना गया है। उपनिषदों एवं काश्मीर शैवदर्शन के गहन विश्लेषणात्मक अध्ययन द्वारा ऐसे अनेक उदाहरण प्रकाश में आ सकते हैं।

सूर्य प्रकाश व्यास³ के अनुसार- काशैव आगमों को प्रमाणशास्त्र मानता है। अतः अपनी मान्यताओं का स्रोत उन्हें ही बताता है। तथापि इसके साहित्य में अनेकशः उपनिषदवाक्यों को भी प्रमाण रूप में उद्धृत किया गया है। ऐसा करते हुए काशैव के दार्शनिक यह प्रदर्शित करना चाहते थे कि उनके विचार उपनिषद् या वेदान्त से भिन्न नहीं। इस प्रवृत्ति के दो कारण हो सकते हैं- पहला यह कि काशैव की प्रमुख एवं मूलभूत मान्यताओं में उपनिषद् विचार से वास्तविक साम्य हो, तथा दूसरा यह कि वास्तविक साम्य न होने पर भी वेद-उपनिषद् की सामाजिक एवं धार्मिक क्षेत्रों में प्रतिष्ठा एवं वर्चस्व को अस्वीकार करते हुए चलना तथा अपने नूतन दर्शन को

1. प्रत्यभिज्ञा-हृदयम्, पृ. 114

2. शब्दज्ञानानुपाती वस्तु शून्यो विकल्पः।

प्रतिष्ठा दिलाना उन्हें सम्भव प्रतीत न हुआ हो। अतः विवश होकर उन्हें उपनिषद् वाक्यों को यत्र-तत्र उद्धृत करना पड़ा हो।

काश्मीरशैवदर्शन के सिद्धान्तों को संरचना पर विचार करने से दोनों ही कारणों में सत्यता प्रतीत होती है।

काश्मीर शैवदर्शन उपनिषदों की अपेक्षा गीता से अधिक प्रभावित है। शैवमत की मान्यतानुसार श्री कृष्ण त्रिक दर्शन को गुरु परम्परामें परिगणित हैं तथा महाभारत के मोक्षपर्व में भी आया है, कि श्रीकृष्ण ने उपमन्यु से दैत एवं अदैत शैवागमों के उपदेश ग्रहण किये।

प्रत्यभिज्ञादर्शन के दार्शनिकों की गोता में विशेष रुचि थी। वसुगुप्त ने गोता पर वासवो नामक टोका लिखी थी जो अनुपलब्ध है। उत्पल और सोमानन्द ने भी अपनी रचनाओं में गोता से प्रमाण उद्धृत किये हैं। अभिनवगुप्त ने भगवद्गीतार्थ संग्रह में शैवदृष्टिकोण से इसका सार प्रस्तुत किया है। रामकण्ठ ने भी गोता पर सर्वतोभद्र नामक टोका लिखी।

प्रत्यभिज्ञादर्शन का अन्य दर्शनों के साथ सम्बन्ध का विश्लेषण यह दर्शाता है कि इस दर्शन की मूल दृष्टि समन्वयवादो है।

इस दर्शन ने अपने मत के निर्माण में अनेक दर्शनों मतों को आत्मसात् किया है। इसके दार्शनिकों ने अनेक दर्शन मतों को इस चतुर्थ से समाहित करके अपना दर्शन प्रस्तुत किया है जिससे एक ओर शैवागमों से उसका सम्बन्ध भी बना रहे और दूसरी ओर वह स्वतन्त्र दर्शन के रूप में भी प्रतिष्ठित हो सके। काश्मीरशैवदर्शन के सिद्धान्त निर्माण में यह पृष्ठभूमि उसको समन्वय दृष्टि की सशक्त आधार देनेवाली है।¹

तृतीय अध्याय
प्रत्यभिज्ञादर्शन के प्रमुख तत्त्व

तृतीय अध्याय

प्रत्यभिज्ञादर्शन के प्रमुख तत्त्व

• क. तत्त्व

व्यापित अर्थवाली तन् धातु से तत् शब्द का अर्थ पररूप किया गया है। अर्थात् जो इस समस्त विश्व को परिव्याप्त किये हैं वह तत्त्व है, उसी का भाव तत्त्व है :

‘तनेति सर्वमिति तत् परं रूपम् तस्यभावस्तत्त्वमित्यर्थः।’¹

अथवा :

ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनो के अनुसार भी उसी का भाव तत्त्व है।

‘तस्य भावस्तत्त्वम्’²

तत्त्व का वास्तविक लक्षण है जो स्वयं एक होकर अनेक स्पर्शों में अव्याभिचार से परिव्याप्त हो :

इदं हि नाम परमेश्वरे दशनि तत्त्वमुद्बुध्यते-यदेकमेव रूपं

व्याभिचारेण अनेकत्र भुवनादनुगामो स्यात्।³

इस दृष्टि से प्रत्यभिज्ञादर्शन में तत्त्व शिव के ही रूप हैं। मूल तत्त्व एक ही है। वह है परमशिव। उदाहरणार्थ पृथ्वी एक तत्त्व है वह अपने कार्य रूप घटपट इत्यादि में नाना प्रकार के शरीरों में और नाना भुवनों में अनुगामो होकर परिव्याप्त है।

अभिनवगुप्त ने ‘तन्त्रालोक’⁴ में तत्त्व को परिभाषा इस प्रकार दी है :

1. तन्त्रालोक विवेक, आ. 9.पृ, 3, भाग 6

2. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनो, 2.219

3. तन्त्रालोक, पृ. 2, भाग 6

4. तन्त्रालोक, 9.4, पृ. 4

स्वस्मिन्कार्ये थ धर्मौथि

यद्वापि स्वसदगुणे ॥ ५ ॥

आस्ते सामान्यकल्पेन

तननादयाप्तभावतः ॥

तत्तत्त्वं क्रमशः पृथ्वी-

प्रधानं पुंशिवादयः ॥ ५ ॥^१

स्व में स्व कार्य में स्वधर्मसमूह में अथवा स्व सदृशवाले गुण पदार्थ मौजो रूप अनुगामी होकर व्याप्त रहता है उसे तत्त्व कहते हैं। प्रत्येक परवर्ती तत्त्व जो अनुगामी होकर व्याप्त रहता है उसे तत्त्व कहते हैं। प्रत्येक परवर्ती तत्त्व की अनुगामी सत्ता है। और इन सबमें जो अनुगामी रहता है वह है-परमाशिव। यहाँ तत्त्वों का अभेदत्व नष्ट नहीं होता। विश्वसर्जन की इच्छा अथवा उसकी स्वतन्त्रता से जब भेद का आभास उन्मोलित हो जाता है तब भी यह बहुधानुगामी तत्त्व एकत्व को प्रतिष्ठा किए रहता है।^२ तात्त्विक अभेद एवं अद्वैत अधुण रहता है। यह तत्त्व कुछ और नहीं उसी परमात्मा के इच्छाजन्य आभास है।

प्रत्यभिज्ञादर्शन में मान्य ३६ तत्त्व इस प्रकार हैं :

१. शिव, २. शक्ति, ३. सदाशिव, ४. ऐश्वर, ५. शुद्धविद्या, ६. माया,
७. कला, ८. विद्या, ९. राग, १०. काल, ११. निर्यात, १२. पुरुष, १३. प्रकृति,
१४. बुद्धि, १५. अहंकार, १६. मन, १७. श्रुति, १८. स्पर्श, १९. चक्षु, २०. रसना,
२१. घ्राण-पंचज्ञानेन्द्रियाँ, २२. वाक्, २३. पाणि, २४. पाद, २५. पायु, २६. उपस्थ-
- पांचकर्मेन्द्रियाँ, २७. शब्द, २८. स्पर्श, २९. रूप, ३०. रस, ३१. गंध पंचतन्मात्रायें
३२. आकाश, ३३. वायु, ३४. अग्नि, ३५. जल, ३६. धरा-पाँच स्थूलभूत।

१. तन्त्रालोक, १:५ पृ. ५

२. तत्त्वतन्त्रयरसातपुनः शिवपदाद भेदे विभक्ति परं।

यद्वयं बहुधानुगामी तदिदं तत्त्वं विभोः शासने॥

तन्त्रालोक, १:२, भाग ६, पृ. ३

1. परमशिव और तत्त्व :

प्रत्यभिज्ञादर्शन में समस्त तत्त्व परमशिव के विश्वमय रूप के उल्लास हैं। जिस प्रकार स्व के भाव को स्वाभाव और स्व के रूप को स्वरूप कहते हैं उसी प्रकार तत् के भाव को तत्त्व कहते हैं।

2. शिव और तत्त्व :

परमशिव के विश्वमय रूप को सामान्यतः शिव कहा जाता है। शिव तत्त्व परमशिव का प्रथम स्पर्द है। ¹ 36 तत्त्वों में प्रथम तत्त्व का नाम भी शिव है। शिव अर्थात् शिवतत्त्व से अगले 35 तत्त्वों का विकास होता है। इन तत्त्वों के विभाजन का आधार आगमवाक्य है। ² सभी तत्त्व परम शिव के शक्ति पक्ष के हो स्फार हैं। अतः इन्हें शिव के शक्तिरूप कहा जा सकता है। इस दृष्टि से इन तत्त्वों को शिव की शक्तियाँ भी कह सकते हैं। यह सब शक्तियाँ चित्शक्ति का स्फार हैं।

3. शिवतत्त्व :

प्रत्यभिज्ञादर्शन में वस्तुतः एकमात्र तत्त्व है। वह है 'शिव', पूर्ण अहंता हो शिवतत्त्व है। इस दर्शन में मान्य 36 तत्त्वों में प्रथम तत्त्व शिव है। उसकी शक्ति चित् है जिस प्रकार मूल वर्ण 'अ' से समस्त वर्णों की उत्पत्ति होती है उसी प्रकार शिवतत्त्व से अन्य सभी तत्त्व अभिव्यक्त होते हैं। प्रत्येक जीव में रहनेवाला आत्मतत्त्व ही शिवतत्त्व है। 'षट्त्रिंशततत्त्वसंदोह' में कहा गया है कि विश्वोन्मोदन को आद्यइच्छाशक्ति ही शिवतत्त्व है। इसी को स्पन्द कहते हैं।

1. Siva Sutras the Yoga of Supreme Identity, Jai Deva Singh, Introduction, P. XXii

2. नाहिं प्रत्यक्षं माया प्रमातुः सर्वत्र क्रमते। अनुमानमप्यमेवम् न हि यद्यदस्ति तत्र तत्र लिंगव्याप्त्या दिग्गहनसंभवः। आगमस्तत्त्वपरिच्छिन्न प्रकाशात्मकमाहेश्वर्य विमर्श परमार्थ किं न पश्येत्, इति तदनुसारेण पदार्थ निर्णयः।

ईश्वरप्रत्यभिज्ञा विमर्शिनी : 2, पृ. 213

चिन्मय सामरस्य को अवस्था में पहुँचकर जिज्ञासु अपने अस्तित्व को परमशिव में लीन कर देता है। परमतत्त्व में लीन होने पर भी कोई तत्त्व अपने स्वरूप को नष्ट नहीं करता सभी तत्त्व परमतत्त्व में लीन हो कर चिन्मय हो जाते हैं।

• ४. शक्ति :

इस अभिरामशाली दृष्टि में सब कुछ जड़ अथवा चैतन परमशिव का विकसित या उन्मीलित रूप है अथवा शिव के शक्ति पक्ष का विस्तार और विकास है। शक्तयोऽस्त्यजगत्सर्वम्। शक्तियास्तु महेश्वरः।¹

1. शिव-शक्ति :

तात्त्विक दृष्टि से यह दर्शन शिव और शक्ति में कोई भेद नहीं मानता।² शक्ति शिव से अभिन्न और अनतिरिक्त है। अभिनवगुप्त ने यद्यपि दोनों को अलग-अलग माना है फिर भी अनुत्तर एवं विश्रान्तिरानन्दः कहकर चित् और आनन्दशक्ति को अभिन्नता स्वीकार की है।³ फिर भी शक्ति का महत्त्व है। यदि शिव में शक्ति न हो तो वह अनोश्वर अथवा जड़ हो जाएगा। शक्ति ही शिव के स्वरूप को पूर्णता प्रदान करती है। 'शिव' में इकार जिसे शक्ति का प्रतीक भी मानते हैं यदि शिव में से निकाल दिया जाए तो 'शिव' शव हो जाएगा अथवा शक्तिहीन, क्रियाहीन हो जाएगा। शिव को शक्ति को बहुत महत्त्व दिया गया है। परन्तु शक्ति भी शिव पर निर्भर करती है। दोनों एक दूसरे के लिए महत्त्वपूर्ण हैं।⁴ शिव की प्रमुख शक्तियाँ पाँच मानी गई हैं। यह हैं-चित् या अनुत्तर शक्ति, आनन्दशक्ति, इच्छाशक्ति, ज्ञान या उन्मेषशक्ति, क्रियाशक्ति।

1. सर्वमंगलशास्त्र से उद्धृत, परमार्थसार योगराज विवृति, पृ. 10

2. न शिवः शक्तिरहितो न शक्तिर्व्यतिरेकिणो।

शक्तिशक्तिमतोभेदः शैवे जातु न विद्यते।।

-शिवदृष्टि : 3.2, पृ. 4

3. तन्त्रसार, पृ. 12

4. शिवदृष्टि : 3.2

2. चित्शक्ति :

‘प्रकाशरूपता चित्शक्तिः।’¹

चित् शक्ति प्रथम तत्त्व को शक्ति है। सूक्ष्मतम रूप होने के कारण इसे अनुत्तर भी कहा गया है। इस शक्ति को महाचित् भी कहते हैं। चित् शक्ति की प्रधानता से वह शिव संज्ञा प्राप्त करता है। शिव की यह प्रथम स्थिति प्रकाशमात्र होती है।

2. आनन्दशक्ति :

‘तस्य च स्वातन्त्र्यम् आनन्दशक्तिः।’²

चित् को भूमिका में आत्मविश्रान्ति का नाम आनन्द है। इसके द्वारा शिव आनन्दमय है। यह आनन्दशक्ति स्वतन्त्र्य शक्ति भी है।

3. इच्छाशक्ति :

‘तच्चमत्कार इच्छाशक्तिः।’³

इच्छाशक्ति से ही शिव विश्व को सृष्टि और संहार करता है। यहकिसी भी विषय से सम्बद्ध न होने के कारण शुद्ध इच्छामात्र होती है। यह आनन्दानुभूति का चमत्कार भी कहो गई है।

4. ज्ञानशक्ति:

‘आमशात्मिकता ज्ञानशक्तिः।’⁴

इसके द्वारा शिव ज्ञान स्वरूप है। इस शक्ति को उन्मेष भी कहा गया है। यह शक्ति शिव के अपने ज्ञानमय स्वरूप को अनुभूति क्षमता है।

5. क्रियाशक्ति :

‘सर्वकारयोगित्वं क्रियाशक्तिः।’⁵

क्रिया शक्ति रूप ही है किसी कर्म के प्रति प्रयास रूप नहीं। ‘क्रियाशक्ति द्वारा

1. तन्त्रसार, पृ. 6

2. तन्त्रसार, पृ. 6

3. तन्त्रसार, पृ. 6

4. तन्त्रसार अ. 1, पृ. 6

हो शिव अपने समस्त स्वरूपों को धारण करता है और विश्वकारिता को प्राप्त करता है। क्रियाशक्ति एक प्रकार से विश्वकारिता को योग्यता या क्षमता है।

यह समस्त शक्तियाँ शाक्तपंचक भी कहलाती हैं। इन शक्तियों का स्वरूप बहुत विस्तृत है। इन्हें विमर्श, स्वातन्त्र्य या प्रकाश भी कहते हैं। प्रत्यभिज्ञादर्शन परमसत्ता के दो स्वरूपों में विश्वास करता है। 'विश्वोत्तीर्ण' तथा 'विश्वमय' इसी को हम निराकृति तथा सर्वाकृति भी कहते हैं। सर्वाकृति विश्वमयः निराकृति विश्वोत्तीर्णः। इनमें से उत्तरस्वरूप का विवेचन प्रकाशविमर्शमय के रूप में लिया जाता है।¹

6. विमर्श :

विमर्श प्रकाश स्वरूप परमेश्वर को अभिन्न शक्ति है। इच्छा ज्ञानादि विभिन्न शक्तियाँ विमर्श का ही विविध रूप हैं।

'विमर्श एव देवस्य शुद्धज्ञान क्रिये यतः।'²

विमर्श के लिए प्रत्यवमर्श और आमर्श शब्दों का भी प्रयोग किया जाता है। विमर्श स्वरूप के कारण ही महामहिम शिव स्वयं को स्वेच्छा से स्वरूप में अथवा आत्मभिन्न रूप में भी आभासित करता है। पर-अपर दोनों ही आभासों को एक करता है एवं पुनः भिन्न भी करता है :

'विमर्शो हि सर्वसहः परमपि आत्मो करोति आत्मानं च परीकरोति, उभयमेकी करोति, एकोकृतंद्वयमपिन्यग्भावयति इत्येवं स्वभावः।'³

विमर्श के सम्बन्ध में यह भी कहा गया है :

'विमर्शो नाम विश्वकारेण विश्वप्रकाशेन विश्वसंहरणेन च अकृतिमहमिति स्फरणाम्।'⁴

इन शब्दों में भी विश्व को सत्ता का वर्णन है :

1. प्रत्यभिज्ञाहृदयम्, अनुवादक, विशालप्रसाद त्रिपाठी, पृ. 32-33

2. ईश्वरप्रत्यभिज्ञा विमर्शिनो : 1.8.11

3. ईश्वरप्रत्यभिज्ञा विमर्शिनो, 1.4.13

4. परा प्रवेशिका, पृ. 2

‘स्वरूपे विश्रान्ति विमर्शः सोऽहमित्ययम् अजड प्रमात् सिद्धिः।’¹

विमर्श नैसर्गिक स्वतः स्फूर्त स्वभाव है। अर्थात् विमर्श अकृतिम अहं को स्फूर्तो है। यही स्फूर्तो सृष्टिकाल में विश्वप्रकाश एवं संहारकाल में विश्वसंहारेण रूप होता है। विमर्श चित्, चैतन्य, कर्तृत्व, स्वातन्त्र्य, स्फुरता, सार, स्पन्दादि विभिन्न नामों से विभूषित होता है।

विमर्श की कोटियाँ :

महेश्वरानन्द ने विमर्श की दो कोटियाँ निर्धारित की हैं :

अ. शुद्ध विमर्श

ब. प्रपंच स्फुरण वैचित्र्य विमर्श

जब विमर्श क्रिया हृदयप्रकाश स्वरूप आत्मा में ही स्थित रहती है तो यह शुद्ध विमर्श क्रिया कहलाती है। तथा जब ‘यह मैं हूँ’ इस प्रकार इदमिति रूप मोक्ष का अनुभव करने लगती है तो विश्वविस्तार से उसे दूसरी कोटि में रखा जाता है।

‘यदा स्वस्मिन् हृदयं प्रकाश एव आत्मनि तिष्ठति, तदा विमर्शः

शुद्धो विमर्शः एव इत्येव व्यवहियते, यदा तु विकल्पोऽश्लेषण लक्षणा

क्षोभमनुभवति तदा विश्वविस्तारः प्रपंच स्फुरण वैचित्र्यात्मा विमर्श इति।’²

त्रिकदर्शन इन दोनों को अन्तःस्पन्द और बहिःस्पन्द के नाम से अभिहित करता है। अभिनवगुप्त³ ने इन दोनों को अन्तःसृजन तथा बहिःसृजन की संज्ञा दी है।

विमर्श पदार्थ के शुद्ध स्वरूप का ज्ञानी है। यह विभिन्न प्रभावों में निर्णय को सामर्थ्य रखता है। विमर्श प्रतिबिम्बों को संस्कारात्मना सुरक्षित भी रखता है।

7. प्रकाश :

परमतत्त्व के शुद्ध स्वरूप के प्रकटोकरणा का साधन प्रकाश है। प्रकाशतत्त्व विश्वमय परमेश्वर के उस स्वरूप को प्रकट करता है जो समस्त विश्वाभासों के लिए आधार का काम करता है। प्रकाश परमतत्त्व के स्वरूप को प्रकट करता है। यह दर्पण के सदृश हैं। दर्पण को तो प्रतिबिम्ब ग्रहण करने हेतु वाह्य प्रकाश को अपेक्षा रहती है। प्रकाशाभाव

1. ईश्वरप्रत्यभिज्ञा विमर्शिनो : 15

2. महार्थमंजरी, पृ. 34

3. सृजन्तो बहि विश्वमन्तश्च संवित् परादेवता हि परामर्शरूपा ।

या गहन अंधकार में दर्पण किसी पदार्थ का प्रतिबिम्ब ग्रहण करने में समर्थ नहीं होता। दूसरी ओर मन को प्रतिबिम्ब ग्रहण करने के लिए वाह्य प्रकाश की अपेक्षा नहीं रहती मन तो स्वतः प्रकाश है।

आदर्शकुक्षो प्रतिबिम्बकारि
सबिम्बकं स्याद यदि मनसिद्धया।
स्वच्छन्द संविन्मुकरान्तराले
भावेष्ते हेत्वान्तरमस्ति नान्यत्॥¹

प्रकाश तो स्वयं प्रकाशमान होने के कारण प्रतिबिम्ब ग्रहण करता है :
अहमेव प्रकाशात्मा प्रकाशे।²

मन के सन्दर्भ में प्रकाशका अभिप्राय विषय की चेतना है। 'प्रकाश' शब्द विश्वमय परमेश्वर के आलोकित दिव्य स्वरूप को प्रकट करता है। विमर्श के पूर्ण आत्मिक सौन्दर्य को उद्भासित करने हेतु 'प्रकाश' का गहन विश्लेषण तथा प्रकाश एवं विमर्श की स्वरूपता का विवेचन आवश्यक है।

प्रकाश एवं विमर्श में नाम भेद के साथ-साथ धारणा भेद भी है। एक समष्टिगत है दूसरा व्यष्टिगत। परन्तु प्रकाश एवं विमर्श में आत्मा और विश्वात्मा के सन्दर्भ में कोई भेद नहीं है। दोनों ही प्रतिबिम्ब ग्रहण करने में समर्थ हैं। तथा सदा प्रकाशित होते हैं किन्तु आत्मा एवं विश्वात्मा के सन्दर्भ में प्रकाश स्वरूप में भेद केवल यह है कि आत्मा अपने वाह्य एवं आन्तरिक वस्तुओं से भी प्रतिबिम्ब ग्रहण करती है, जैसे -स्वप्न अथवा कल्पना में और प्रत्यक्ष में किन्तु विश्वात्मा सर्वमय है। अतः उसकी प्रकाशरूपता पर किसी वाह्य वस्तु का प्रतिबिम्ब पड़ने का प्रश्न ही नहीं उठता।³

प्रकाश एवं विमर्श में वाह्य भेद तो दृष्टिगोचर होता है परन्तु दोनों एक ही परमशक्तिमान सत्ता के विश्लेषण हैं। प्रकाश स्वरूप महेश्वर का यह विमर्श ही महेश्वर्य

1. परमार्थचर्चा : 5

2. ईश्वर प्रत्यभिज्ञा विमर्शिनी, पृ. 243

3. बौद्ध, वेदान्त एवं काश्मीर शैव दर्शन, सूर्य प्रकाशव्यास, पृ.

है -

स एव विमर्शत्वेन नियतेन महेश्वरः ।¹

प्रकाश एवं विमर्श उस परमशिव के पूर्ण स्वरूप की दो संज्ञायें हैं। प्रकाश और विमर्श अस्ति और भाति के सदृश हैं। सैद्धान्तिक मान्यता है जिसका अस्तित्व है वह भासित अवश्य होता है। अतः अस्ति और भाति के द्वारा एक ही तत्त्व के दो पक्षों को प्रकाशित किया जाता है। वस्तुतः तत्त्व एक ही हैं।

अस्ति 'प्रकाश' का द्योतन करता है तथा भाति विमर्श का। अस्ति भातिमय होने के कारण शिव शक्तिमय है। अस्तिभातिमय यह परमतत्त्व प्रकाश-विमर्शमय एवं शिव-शक्तिमय कहा जाता है। प्रकाश वस्तु का प्राणपद धर्म है। और यह धर्म होना ही विमर्श है। प्रकाश शिव की शक्ति को स्थूल क्रिया में प्रकट करता है और विमर्श शक्तिमान को प्रकाश और विमर्शमें कोई भेद नहीं है। प्रकाश ही विमर्श है और विमर्श ही प्रकाश है।

'प्रकाशो हि विमर्शसारः विमर्शोऽपि प्रकाशसारः ।'²

प्रकाश और विमर्श परस्पर भिन्न नहीं हैं और वह प्रकाश विमर्श से भिन्न नहीं है।³

बिना विमर्श के प्रकाश असत्कल्प है :

'प्रकाशश्च विमर्श बिनाऽसत्कल्प एव ।'⁴

प्रकाश और विमर्श परस्परसंश्रित हैं। तथा यह प्रकाशस्वरूप शिव विमर्श रूप शक्ति से रहित नहीं है और न ही शक्ति शिव से रहित है। यही शिवशक्ति सामरस्य कहलाता है। सामरस्य को अवस्था में जब उसका स्वरूप प्रकाशरूपता एवं विमर्शरूपता के प्राधान्य से प्रकाशित होता है तभी उसके लिए विश्वमय, विश्वोत्तोरण, प्रकाशविमर्शमय,⁵

1. ईश्वरप्रत्यभिज्ञा कारिका, 1.8.11

2. भास्करो, 1.3

3. प्रकाशमान न प्रथक प्रकाशात् । स च प्रकाशो न पृथग् विमर्शति विभैवि ।

4. भास्करो, 1.1.1

5. ईश्वर प्रत्यभिज्ञा विमर्शिनी, 1.1, प्रत्यभिज्ञा हृदयम्, पृ. 25-6

शक्तिमान जैसे शब्दों का व्यवहार होता है।

8. स्वातन्त्र्य एवं विमर्श :

परमतत्त्व को महेश्वर भी कहा जाता है। इसका आशय है कि वह इच्छा, ज्ञान क्रियादि शक्तियों के ऐश्वर्य का परम निधान है। वह शक्तियाँ किसी भी देशकाल में उससे विच्छिन्न नहीं होतीं इच्छा, ज्ञान, क्रियादि शक्तियाँ परमतत्त्व की स्वातन्त्र्य शक्ति के अपर पर्याय हैं। वह इच्छा करने, जानने एवं क्रिया करने में पूर्ण स्वतन्त्र है। यह उसका स्वातन्त्र्य स्वभाव है कि वह प्रमाद रूप में प्रकाशित हो या प्रमेय रूप में।

परमशिवो भगवान् स्वातन्त्र्यादेव रुद्रादिस्थावरान्ते

प्रमातृरूपतया नील सुखादि प्रमेय रूप तथा च..... ।¹

स्वातन्त्र्य विमर्श का ही पर्याय है। यह महेश्वर को प्रधान शक्ति का परिचायक है। उस परमतत्त्व विश्ववपु की अन्य शक्तियाँ इसी में समाहित हैं। स्वातन्त्र्य को अनन्यनिरपेक्ष भी कहा गया है।

‘अनन्य निरपेक्षतेव परमार्थतः आनन्द ऐश्वर्यम् स्वातन्त्र्यम् चैतन्यम्।’²

‘सोमानन्द’³ स्वातन्त्र्य को उस परमेश्वर को अनिरुद्ध इच्छा कहते हैं।

अभिनवगुप्त,⁴ ने अपने स्तोत्रों में निजेच्छा प्रसरता को ही स्वातन्त्र्य माना है।

वह उसे चमत्कृति⁵ तथा स्फुरता⁶ की संज्ञा से भी सम्बोधित करते हैं। आचार्य क्षेमराज⁷ के अनुसार विश्व को विभिन्न भूमिकाओं के प्रच्छादन तथा उन्मोलन के

1. ईश्वरप्रत्यभिज्ञा विमर्शिनी : 1.1

2. ईश्वरप्रत्यभिज्ञा विमर्शिनी : 1.255

3. आत्मेव सर्वभावेषु स्फुरन्निवृत्तचिदवपुः अनिरुद्धेच्छाप्रसरः प्रसर-द्रता क्रियः शिवः ।
शिवदृष्टि : 1-2

4. विश्वस्वाभावपटले परिजृम्भमाणविच्छेदशून्यपरमार्थचमत्कृतिर्था ।

अभिनवगुप्तः एन हिस्टारिकल एण्ड फिलसाफिकल स्टडी : दि; संस्करण, पृ. 327

6. ध्यायेयं तां त्वां कथं स्वस्फुरत्ताम्, रहस्यपंचदशिका ।

7. चित्तिरित्येकवचनं देशकालाद्यनवच्छिन्नतामभिदधत् समस्तभेदवादानामवास्तवाटां
व्यनक्ति ।

तारतम्य का आधार उसी एक चिदात्मा का स्वातन्त्र्य स्वभाव है। यही उसका ऐश्वर्य है। जिस के कारण वह आनन्द शब्द से अभिहित किया जाता है। क्षेमराज चिति के माध्यम से भी इस स्वातन्त्र्य को स्पष्ट करते हैं। शिवसूत्रों में इसे 'चैतन्य' कहा गया है :

‘चैतन्यमात्मा।’¹

इसको व्याख्या करते हुए कहा है- चेतयते इति चेतनः सर्वज्ञानक्रियास्वतन्त्रः, तस्य भावः चैतन्यं सर्वज्ञानक्रियासंबन्धमयं परिपूर्ण स्वातन्त्र्यम् उच्यते।²

शैवस्वातन्त्र्यवाद के अनुसार परमसत्ता स्वातन्त्र्यस्वभाव के कारण सब कुछ अपने में तथा अपने द्वारा अभिव्यक्त करती रहती है। वह इस विश्व का निमित्त कारण भी है और समवायि कारण भी। विश्व की प्रक्रिया में परमतत्त्व की इच्छा प्रधान है। इसका स्वातन्त्र्य स्वभाव अद्भुत है। परमतत्त्व परमार्थ सत्य है। सत् ये युक्त होने का तात्पर्य है सत्त्वान् या प्रकाशवान् होना। जो भी वस्तु सत् है, वह सत्तावान् है। प्रकाशवान् है। जगत् की भी सभी वस्तुएँ प्रकाशित हो रही हैं उन्हें भी सत् माना जाता है पर इन्हें परमार्थ सत् नहीं माना जा सकता क्योंकि सांसारिक वस्तुएँ स्वतन्त्र नहीं हैं। यह अपनी सत्ता के लिए किसी अन्य पर निर्भर हैं। परमसत्ता वह है जो अपनी सत्ता के लिए किसी अन्य पर निर्भर न हो। परमसत्ता वह है जो अपनी सत्ता के लिए किसी अन्य पर निर्भर न हो - जडस्य स्तैव कथं चिद् व्यक्ति बिना सिद्धा। स्फुरद्भूता हि सत्ता। स्फुरद्भूता च प्रकाशमानता।।³

सर्वव्यापी तो एक ही प्रकाशतत्त्व है जो परम शिव है। प्रकाश, विमर्श, स्वातन्त्र्य यह सभी परमतत्त्व के अभिधान हैं। पूर्णता इस परमतत्त्व की महत्त्वपूर्ण विशेषता है। यह अद्वय तत्त्व जगत् के विविध सत्य रूपों में आभासित एवं प्रकाशित होते हुए भी पूर्ण बना रहता है। यह पूर्णता सार्वकालिक प्रकाश है, विमर्श है, स्वातन्त्र्य है, और साधारण शब्दों में महाशिव है।

1. शिवसूत्र, 1. पृ. 6

2. शिवसूत्र, जयदेव अनूदित, पृ. 6

3. शिवदृष्टि, 4. 7

महाकवि कालिदास की कृतियों में यह शिवतत्त्व छाया हुआ है। वस्तुतः कालिदास के समस्त दार्शनिक चिन्तन का केन्द्रबिन्दु 'शिव' ही है। इनके अनुसार सम्पूर्ण विश्व शिवमय है। शिवतत्त्व क्या है— यह जानना सहज नहीं है। वाणी, बुद्धि और मन की वहाँ तक पहुँच नहीं है। उसे तत्त्वतः कौन जान सकता है।

साक्षाद दृष्टोऽसि न पुनर्विदमस्त्वां वचम जसा ।

प्रसोद कथयात्मानं, न धियां पथि वतसि ॥ ¹

सप्तऋषि गण शिव से कहते हैं कि हम लोग तत्त्वतः आपको नहीं जानते क्योंकि बुद्धि को वहाँ तक पहुँच हो नहीं है।

महामहिम शिव के स्वरूप का वर्णन करते हुए कालिदास ने शिव के प्रकाशविमर्शमय स्वरूप को ही प्रस्तुत किया है। महाशिव विश्व का गुरु है। ² वह जगत् का अध्यक्ष है। ³ वह मनोरथ का अविषय है। ⁴ सम्पूर्ण विश्व का आत्मतत्त्व अर्थात् विश्वात्मा है। ⁵ शिव को उत्पत्ति के विषय में तो जाना ही नहीं जा सकता क्योंकि शिव ब्रह्मा के भी कारण हैं। ⁶

विवक्षता दोषमपि च्युतात्मना त्वयैकमोशं प्रति साधु भाषितम् ।

यमामनन्त्यात्मभुवोऽपि कारणं कथं स लक्ष्यप्रभवो भविष्यति ॥ ⁷

जगत् के कण-कणमे व्याप्त शिव त्रिलोक्य बन्ध है क्योंकि वह तीनों लोकों का नाथ है :

अकिंचनः सम्प्रभवः स संपदां, त्रिलोकनाथः पितृसदमगोचरः ।

स भोमरूपः शिव इत्युदीयते, न सन्ति याथाार्थविदः पिनाकिनः । ⁷

1. कुमारसम्भवम्, 6/22

2. तत्रैव : 6/15

3. तत्रैव : 6/17

4. तत्रैव : 6/17

5. तत्रैव : 6/88

6. तत्रैव : 5/81

7. तत्रैव : 5/77

महादेव के यथार्थतत्त्व को जाना नहीं जा सकता :

‘न सन्ति यथार्थविदः पिनाकितनः ।

तथा रघुवंश में विष्णु के स्तुतिपरक श्लोक में भी यही लिखा है—कि तुम्हारी वास्तविकता कौन जानता है ? अर्थात् कोई नहीं ।

अजस्य गृह्णतो जन्म निरो य हतद्विषः ।

स्वपतो जागरूकस्य याथार्थ्यविद कस्तव ॥ ¹

विश्व विकास की प्रक्रिया में उसकी इच्छा प्रधान है। उसकी क्रियाशक्ति उसकी इच्छाशक्ति द्वारा संचालित होती है। उसके कर्तृस्वरूप होने के कारण उसका ज्ञान ही क्रिया है। इस ज्ञान और क्रिया की परस्पराश्रिता का नाम इच्छा है। सम्पूर्ण सृष्टि उसकी इच्छाशक्ति का ही प्रकाशन है। कालिदास ने इसे सिसृधा कहा है। अर्थात् सृष्टि के सर्जन की इच्छा।

स्त्रोपुंसावात्मभागीते भिन्नमूर्तेः सिसृधया ।

प्रसूतिभाजः सर्गस्य तावेव पितरौ स्मृतौ ॥ ²

विश्व की विभिन्न भूमिकाओं का प्रच्छादन तथा उन्मीलन इसी चिदात्मा का स्वभाव है।

आत्मानामात्माना वेत्ति सृजत्यात्मानमात्मना ।

आत्मना कृतिना य त्वमात्मन्येव प्रलोयते ॥ ³

शिव के इस ‘शिवत्त्व’ का स्वभाव ही विमर्श है। सृष्टि अवस्था में विश्वकार होने से ‘स्थिति’ में विश्व के प्रकाशन द्वारा तथा ‘संहार’ में आत्मसात् करने से शिव में जो अहं भाव है उसी को विमर्श कहते हैं। वह § शिव § स्व में स्वज्ञ है। स्व में स्व को उत्पन्न करता है। स्वेच्छा से स्व में ही लीन कर लेता है। यही उसका स्वभाव है यही उसकी शक्तियों का प्रकाशित रूप है।

1. रघुवंशम्, 10/24

2. तत्रैव : 2/7

3. तत्रैव : 2/10

प्रकृति के प्रमुख उपादान जल, वायु, सूर्य चन्द्र, आकाश, पृथ्वी, जीव जन्तु, सम्पूर्ण वनस्पतियाँ, मेघ, नदी, पहाड़ इत्यादि इन सबको प्रकाशित करनेवाला शिव ही है। वही स्वेच्छा से चराचर जगत् को प्रकाशित करता है।¹ शिव तत्त्व जड़-चेतन सभी में समष्टि और व्यष्टि रूप से वर्तमान है। वह सब को अन्तरात्मा है :

या नः प्रोतिविरूपाक्षः त्वदनुज्ञानसंभवा ।

सा किमावेधते तुभ्यमन्तरात्मासि देहिनाम् ॥²

सब कुछ उसी से उत्पन्न हुआ है, पर वह किसी से उत्पन्न नहीं है। वह संसार का अन्त करता है पर स्वयं निरन्तक है। वह संसार का आदि है, पर स्वयं अनादि है। उस जगत् के स्वामी का कोई स्वामी नहीं है :

जगद्यो निरयो निस्तत्त्वं जगदन्तो निरन्तकः ।

जगदादिरनादिस्तत्त्वं जगदोशो निरोश्वरः ॥³

प्रकाशात्मा शिव ही सृष्टि अवस्था में विश्वकार हो जाता है। वह धिति, जल, पावक, गगन, समोर का विश्व में प्रकाशन करता है। पंचतत्त्व निर्मित मानव का जन्म होता है। समस्त अन्नादि बीजों और वनस्पतियों से उत्पत्ति होती है। उसी केद्वारा प्राणी प्राणवान् होते हैं। जीव-जगत् में चेतनता आती है। सृष्टि में यह घेना तथा उल्लास ही शिव की विश्वाकार स्थिति है। यह शिव की शक्ति पंचक का ही परिणाम है:

सा सृष्टिः स्रष्टुराद्या वहति विधिद्वतं या हविर्या च होत्रो

ये द्वे कालं विधन्तः श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्वम् ।

यमाहु सर्वबीजप्रकृतिरिति यथा प्राणिनः प्राणवन्तः

प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरशः ॥⁴

1. यदमो धमपामन्तरूपतं बीजमज त्वया ।

अतश्चराचरं विश्वं प्रभवस्तस्य गीयते ॥ कुमारसम्भवम् : 2/5

2. या नः प्रोतिविरूपाक्षः त्वदनुज्ञानसंभवा ।

सा किमावेधते तुभ्यमन्तरात्मासि देहिनाम् ॥ तत्रैव, 6/21

3. तत्रैव, 2/9

4. अभिज्ञान शाकुन्तलम्, 1/1

विमर्श के कारण हो महामहिम शिव स्वयं को स्वेच्छा से स्वरूप में तथा आत्मभिन्न रूप में आभासित करता है। शिव अपनी समस्त क्रियाएँ करने और शक्तियों के प्रकाशन के विषय में स्वतन्त्र है। प्रत्यभिज्ञादर्शन की प्रसिद्ध मान्यता है कि वह स्वेच्छा से विश्व का उन्मोलन करता है।

‘स्वेच्छाया स्वाभित्तौ विश्वमुन्मोलयति।’¹

यही शिव का स्वातन्त्र्य है कि वह जैसा चाहता है जिस रूप में चाहता है, प्रकाशित होता है। कवि कालिदास भी परमतत्त्व के इस स्वातन्त्र्य का समर्थन करते हैं। उनके अनुसार परमतत्त्व द्रव भी है, कठोर भी है, स्थूल भी है परमाणु भी है, चल भी है, अचल भी है, वह व्यक्त भी है, व्यक्तेतर भी है। शेषवर्गों में उसकी इच्छा का अभिघात नहीं है :

द्रवः संघातकठिनः स्थूलः सूक्ष्मोलघुगुरुः।

व्यक्तो व्यक्तेतरश्चासि प्रकाम्यं ते विभूतिषु॥²

वह स्वतन्त्र है। उसके स्वरूप का निश्चय नहीं किया जा सकता।³ उसको कोई क्रिया अपने लिए नहीं होती वह तो मात्र शक्ति का प्रदर्शन करता है। फिर भी संसार में वह अपनी आठ मूर्तियों के द्वारा जाना जाता है।

विदितं वो यथा स्वार्था न मे काश्चित् प्रवृत्तयः।

ननु मूर्तिभिरष्टाभिरित्यं भूतो स्मि सूचितः॥⁴

कालिदास ने नानन्दो श्लोक में इन्हीं आठ मूर्तियों को वन्दना की है।⁵ शिव को लीला स्वतन्त्र है। वह संसार को धारण करता है।

कलितान्योन्यसामर्थ्यैः पृथिव्यदिभिरात्मभिः।

येनेदं ध्रियते विश्वं धुर्येयनिमिवाध्वनि॥⁶

1. प्रत्यभिज्ञाहृदयम्, सूत्र 2

2. कुमारसम्भवम् : 2/11

3. तत्रैव : 5/78

4. तत्रैव : 6/26

5. अभिज्ञानशाकुन्तलम् : 1/1

6. कुमारसम्भवम् : 6/76

वह अनन्त पुरुष लोक लोकान्तरों का अधिष्ठाता है। वही हमारे आत्मतत्त्व में प्रतिष्ठित है, सृष्टि का पालक भी है, संहारक भी। वह विश्वात्मा है।¹ इतना सब करते हुए भी शिव का अद्वैत नष्ट नहीं होता वह एक ही बना रहता है। शैवदर्शन में जगत् की सत्ता सत् स्वरूप को गई है। यह समस्त सृष्टि अनन्तशक्ति सम्पन्न शिव में उसी प्रकार अवस्थित है जिस प्रकार बोज में अंकुर तथा अग्नि में धूप की सत्ता होती है। यह नाना रूपात्मक जगत् सत्य है। एक ही तत्त्व विविध रूपों में आभासित होता है। परम तत्त्व और आभासित तत्त्वों में अभेद सम्बन्ध है। शैव प्रत्यभिज्ञादर्शन में इसे ही अभेदवाद या आभासवाद कहा गया है। अभेदवाद तथा आभासवाद एक ही तत्त्व के निर्देशक हैं।

ग. अद्वैतवाद :

कालिदास उत्कृष्ट कोटि के अद्वैतवाद को माननेवाले थे। उन्होंने स्वयंभू, विष्णु, शिव इस त्रिमूर्ति के अद्वैतभाव का प्रतिपादन किया है। उनको दृष्टि में शिव, विष्णु और ब्रह्मा में कोई भेद नहीं है। परमतत्त्व तो अखण्ड, शुद्ध, अद्वैत है।

नमस्त्रिमूर्तये तुभ्यं प्राक्सृष्टे केवलात्मने।

गुणत्रयविभागाय परश्चादभेदमुपेयुषे ॥²

शिव सगुण भी है, निर्गुण भी है। शिव साकार होकर भी निराकार है। पाणिपाद रहित होकर भी ग्रहण करनेवाला है, गमन करनेवाला भी है। सर्वेन्द्रिय गुणाभासन होने पर भी इन्द्रियों से हीन है। वह दूर भी है, समीप भी है। निर्विकल्प होते हुए भी सविकल्प है वह मन और बुद्धि से परे होते हुए बुद्धिगम्य है। वह अणु से भी परमाणु है। महान से भी महान है। वही सृष्टि पालक और संहारक भी है। वही ब्रह्मा विष्णु और शंकर है। वह तीनों रूपों में स्थित एक ही है।⁴

1. कुमारसम्भवम् : 6/1

2. तत्रैव : 2/4

3. रघुवशम्, 10/16

4. शिव ही शक्ति है। लेख, आचार्य बलराम शास्त्री, दैनिक जागरण में प्रकाशित।
दिनांक - 25:2:1992

अभेदवाद :

मूलतः और तत्त्वतः सभी परम चेतन से अभिन्न हैं। स्त्री और पुरुष उसके ही शरीर के दो भाग हैं जो उसने सृष्टि की इच्छा से किए हैं।¹ स्थूल जगत् केवल मनुष्यमय ही नहीं है। मानवेतर भी बहुत कुछ है, जिसे सहज बोध के आधार पर प्रकृति को संज्ञा दी जाती है। कालिदास प्रकृति को परमसत्ता का स्पन्द मानते थे। प्रकृति अव्यक्त सत्ता का व्यक्त स्वरूप है। कालिदास ने तभी तो शिव और पार्वती को जगत् का माता-पिता माना है।² शंकर-पार्वती के विवाह के प्रसंग में इस तथ्य को और भी स्पष्ट किया है :

यावन्त्येतानि भूतानि स्थावराणि चराणि च।

मातरं कल्पयन्त्वेनामोशो हि जगतः पिता ॥³

स्थावर और जंगम जितने भी प्राणी हैं पार्वती उन सबकी माता होंगी क्योंकि शिव जगत् के पिता हैं। शिव के जगत्के पिता होने के कारण जगत् अपने जनक से भिन्न नहीं हो सकता। यह तथ्य काव्यात्मक रूप से रघुवंश में आया है—कि रघु का पुत्र रूप, गुण और यौवन में उसी प्रकार भिन्न नहीं हुआ जिस प्रकार एक दोपक से जलाये जाने पर दूसरा दोपक उससे भिन्न नहीं होता।⁴ मूलतत्त्व और आभासों में अभेद सम्बन्ध है। यही प्रत्यभिज्ञा दर्शन का अभेदवाद या अभिसवाद है।

•ध. सामरस्य :

तात्त्विक अभेद को सामरस्य भी कहा जाता है। प्रत्यभिज्ञादर्शन में शिव तथा शक्ति के सामरस्य पर बल दिया गया है। शिव और शक्ति का अग्नि और दाहकता की भाँति सामरस्य कहा गया है।⁵ शिव शक्ति से तथा शक्तिशिव से अलग नहीं है। दोनों एक साथ एक रूप होकर शाश्वत भाव से विद्यमान हैं। इस दर्शन में नोर-नोर

1. कुमारसम्भवम् : 2/7

2. रघुवंशम् : 1/1

3. कुमारसम्भवम् : 6/80

4. रघुवंशम् : 5/37

5. शिवप्रत्यभिज्ञा विमर्शिनी : 1.6.7

प्राकृतिक सौन्दर्य पूर्ण निष्काम, नित्यनवीन और चिरन्तन है। इस सौन्दर्य का साक्षात्कार प्रायः हमारी सत्ता पर ऐसा अधिकार कर लेता है कि हम कुछ काल के लिए अपने आपको भूलकर उस सौन्दर्य की भावना के रूप में परिणत हो जाते हैं। अन्तर्सत्ता को यही तदाकार परिणति सौन्दर्य की अनुभूति है। और इसी सौन्दर्य के धरातल पर कवि को अनुभूति भावना एवं कल्पना द्वारा काव्य और प्रकृति का संगम होता है। वाह्य प्रकृति आत्मा को स्निग्ध शान्ति एवं समरसता प्रदान कर भेदभाव से अलग अभेद एवं एकत्व तक पहुँचाकर सच्ची रसानुभूति कराती है।¹

यह अभेद एवं एकत्व तक पहुँचकर होनेवाली सच्ची रसानुभूति ही आनन्द है। अन्तर्सत्ता को तदाकार परिणति का तात्पर्य यही है कि जोव परमतत्त्व की सत्ता का कण-कण में अनुभव कर और अपने आपको उस का ही अंश जानकर आनन्दलाभ प्राप्त करता है।

प्रकृति जोव के अन्तःकरणा को आन्दोलित करती है। जब सम्पूर्ण चराचर सृष्टि उस परमशक्ति को प्रतिछाया है तो फिर केवल मानवीय भावों का वर्णन एक पक्षीय होगा। प्राकृतिक भाव मानवीय भावों के साथ सामरस्य रखते हैं यही सनातन सत्य कालिदास की कृतियों में चरितार्थ हुआ है।

कालिदास द्वारा वर्णित प्रकृति सर्वथा सचेतन तथा मानवीय संवेगात्मक क्रियाओं से समन्वित प्रतीत होती है। उदाहरण के लिए 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' के चतुर्थ अंक में प्रकृति वर्णन जिसमें प्रकृति द्वारा शकुन्तला के शृंगार के लिए सामग्री प्रदान की जाती है -

क्षौमं केनायिदन्दुपाण्डु तरुणा मांगल्यमाविष्कृतं

निष्ठयूतश्चरणोपभोगसुलभो लाक्षा रसः केनचित्।

अन्येभ्यो वनदेवताकरतलैरुपर्वभागो त्यिष्यते-

दत्तान्याभरणानि तत्किमलयोदभेदः प्रतितुंद्रिभिः॥²

1. कालिदास और प्रकृति : पृ. 5

2. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 4/5

तथा वह शकुन्तला को विदाई के समय दुःखी भी होता है :

उदंगलितदर्भकवला मृगाः परित्यक्तनर्तना मयूराः ।

अपहृतपाण्डुपत्रा मुञ्चन्त्यश्रूणीव लताः ॥ ¹

कालिदास पार्थिवता को दिव्यता प्रदान करते हैं। वह मेघदूत में मेघ के वर्ण को उपमा विष्णु से देते हैं :

रत्नछायाव्यतिकर इव प्रेक्ष्यमेतत् पुरस्ताद्

वाल्मीकिगत प्रभवति धनुष्यखण्डमाखण्डलस्य ।

येन श्यामं वपुरतितप्तं कान्तिमापत्स्यते ते

वहिणिव स्फुरितरुचिना गोपवेषस्य विष्णोः ॥ ²

तथा ब्रह्मसरोवर से निकलनेवाली सरयु नदी को अव्यक्त मूल प्रवृत्ति से समुत्पन्न बुद्धि तत्त्व के समान बताते हैं :

पयोधरैः पुण्यजनाङ्गनानां निविष्टहेमाम्बुजरेणु यस्याः ।

ब्राह्मं सरः कारणमाप्तवाचो बुद्धेरिवात्यक्तमुदाहरन्ति ॥ ³

कवि ने प्रकृति के विविध उपादानों को मानवीय सौन्दर्य के मापदण्ड के रूप में वर्णित किया है :

अधरा कसलयरागः कोमलविटपानुकारिणौ बाहु ।

कुसुममिव लोभनोयं यौवनङ्गेषु सनद्धम् ॥ ⁴

आवर्जिता किञ्चिदिवस्तानाभ्यां वासो वसाना तरुणाकि रागम् ।

पर्याप्त पुष्पस्तवकावनम्रा संघारिणी पटलविनो लतेव ॥ ⁵

कालिदास ने सृष्टि सौन्दर्य वर्णन में जोव तथा प्रकृति के शाश्वत सम्बन्धों का

1. अभिज्ञान शाकुन्तलम् : 4/12

2. मेघदूतपूर्वमेध, 5

3. रघुवंशम् : 13/60

4. अभिज्ञान शाकुन्तलम् : 1/19

5. कुमारसम्भवम् : 3/54

कोई पहलू अनछुआ नहीं छोड़ा है। वह विश्व को मौलिक आनन्दमयता में आनन्द और सौन्दर्य का अविच्छेद चाहते हैं। आनन्द निर्मल अनविच्छन्न चेतना का ही प्रकाश है जो जड़ तथा चेतन सृष्टि में समानभाव से व्याप्त है। जब तक सृष्टि का भोग नहीं होगा उसको आत्मस्थ नहीं किया जायेगा तब तक मोक्ष भी अप्रासंगिक होगा। तथा जोव आनन्दलाभ से भी वंचित रहेगा।

मानव जोवन से असंबद्ध होने पर प्रकृति के जोवन का कोई महत्त्व नहीं है। वस्तुतः मनुष्य को आँखों के अभाव में प्रकाश-शक्ति को स्पन्दनों का समवाय मात्र और ध्वनि इसी प्रकार के स्पन्दनों का समवाय सिद्ध होगा। मनुष्य को इन्द्रियाँ तथा मस्तिष्क ही इन स्पन्दनों को आनन्द के संवेदनों के रूप में परिणत करते हैं। इस प्रकार प्रत्येक आत्मा परिवर्तन का एक केन्द्र है जिसके सहारे निरी शक्ति उच्चतर मूल्यों में रूपान्तरित हो जाती है।¹

भारतीय प्रतिभा ने मानव, प्रकृति तथा परमेश्वर में कोई विभेद अथवा पार्थक्य नहीं समझा। कालिदास को कृतियों में ऐसा देखा जाता है कि प्रकृति के प्रति मनुष्य का प्रेम चित्रित करते - करते कवि को भावना मनुष्य के प्रति प्रकृति का प्रेम चित्रित करने लगतो है और फिर इन दोनों से हटकर परमेश्वर के प्रति इन दोनों के अनुराग का वर्णन करने लग जातो है। मानव जोवन तथा प्रकृति जोवन के संग्रथन को एक आवश्यकता और आनन्द के रूप में चित्रित किया गया है.... प्रकृति के प्रत्येक महान् रूप से उनका निकट का परिचय है।² सम्पूर्ण घराघर सृष्टि में एक सार्वभौम आत्मा को व्याप्ति मानने के अतिरिक्त भारतीय दर्शन एवं धर्म भावना में सृष्टि सौंदर्य को विश्व को मूल सत्ता अथवा परमशिव से अभेदभाव स्थापित करने के मार्ग में बाधक नहीं साधक माना गया है। क्योंकि सम्पूर्ण सृष्टि अव्यक्त सत्ता का व्यक्त स्वरूप है।

मनुष्य और प्रकृति के गम्भीर आत्मोप बोध द्वारा कालिदास ने जोव को अद्वैतभाव दूर कर के सामरस्य में आनन्दानुभूति का उपदेश दिया है। वह जोव को तात्त्विक अभिन्नता का ज्ञान कराने के लिए सृष्टि सौन्दर्य के वर्णन को ही श्रेष्ठ साधन मानते हैं।

1. महाकवि कालिदास, पृ. 325

2. तत्रैव. पृ. 326-27

कालिदास ने आनन्द के दोनों पक्षों लौकिक एवं अलौकिक को दर्शाया है।

इसके लिए उन्होंने अलौकिक पात्रों को मानवीय वैचारिक और व्यवहारिक धरातल पर भी प्रतिष्ठित किया है। उदाहरणार्थ कुमारसम्भवम् में शिव-पार्वती का चरित्र। इन चरित्रों में कालिदास ने लौकिक तथा अलौकिक स्वरूपों का सम्मिश्रण किया है। वह लौकिकानन्द के माध्यम से अलौकिक आनन्द के भोग को प्रेरणा देते हैं।

जोवात्मा को आनन्दोपलब्धि में द्वैत भाव ही बाधक बनता है। लौकिक आनन्दोपलब्धि में वासनायें असंयम बुद्धि को तर्कमयता, प्रमादता, संशय एवं विश्वासों का अभाव घेतना अथवा स्मृति का खण्डित होना यह सब ऐसे द्वैतभाव हैं जो जोव को वास्तविक आनन्दोपलब्धि में बाधा डालते हैं। कालिदास ने अभिज्ञान शाकुन्तलम्, विक्रमोर्वशीयम्, मालविकाग्निमित्रम्, कुमारसम्भवम्, मेघदूतम् में यही दर्शाया है। किंचित रूप परिवर्तन से यही भाव जोव और परमेश्वर के मध्य द्वैत का कारण होते हैं और जोव चिदानन्द लाभ से वंचित रहता है। द्वैत का परित्याग करने पर अद्वैत को अनुभूति से ही अंतस्थल में आनन्द का स्फुरण होता है। जोव सत्यं, शिवम् सुन्दरम् को भावना से परिपूर्ण हो अखण्ड आनन्द काभोक्ता बन जाता है।

. च. वाक् :

जिस प्रकार शरीर में वाक् शक्ति {वाणी} अभिव्यक्ति का प्रधान साधन है, उसी प्रकार वाक् परमात्मा को उस शक्ति का जिससे सम्पूर्ण तत्त्व परिचालित होता है, प्रतिनिधित्व करती है। 'प्रत्यभिज्ञादर्शन' यह उद्घोष करता है कि सभी मन्त्र वर्णात्मक हैं और सभी वर्ण शिव से युक्त हैं।¹ परा तथा अपरा दोनों विद्याओं का शरीर शब्दराशि है। उसी को सत्ता है। अर्थात् समस्त विश्व को अहं विमर्शनात्मा स्फुरता मन्त्रों का रहस्य है सभी मन्त्रों का स्वरूप वर्ण है और इनका स्रोत बिन्दु शिव है। सारा विश्व वाक् और अर्थ को संपृक्त लोला है।

क्रोडा ते लोकरचना सखा ते चिन्मयः शिवः।

आहारस्ते सदानंदो वासस्ते हृदयं सताम्॥²

1. मन्त्रवर्णात्मकाः सर्वे सर्वे वर्णाः शिवात्मकाः। प्रत्यभिज्ञाहृदयम्, पृ. 110

2. परात्रिंशिका विवृति में पृष्ठ 99 पर उद्धृत शिवदृष्टि की उक्ति।

महाकवि कालिदास वाक् और अर्थ को संपृक्तता को इस प्रकार व्यक्त करते हैं कि वाक् की दिव्यता स्वतः स्पष्ट हो जाती है :

वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थपुतिपत्तये ।

जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ ॥ ¹

प्रत्यभिज्ञादर्शन वाक् का कारण शिव को स्वीकार करता है— सर्वे वर्णाः

शिवात्मका । कवि कालिदास भी वाक् का कारण 'शिव' को मानते हैं । उनके अनुसार वह देववाणो जिसका आरम्भ ओंकार है जिसका तीनों न्यासों से अर्थात् उदात्त, अनुदात्त, स्वरित द्वारा उच्चारण होता है, जिनका कर्म यज्ञ और फल स्वर्ग है । ऐसी देववाणियों के कारण ब्रह्मा/शिव हैं । ² विश्वविकास की प्रक्रिया में प्रत्यभिज्ञादर्शन वाक् को महत्त्वपूर्ण मानता है । इस दर्शन में विभिन्न चेतना भूमियों को नागरी या शारदा वर्णमाला के माध्यम से समझाया गया है । डॉ. ग्रिपसन के अनुसार शैवदर्शन की यह मान्यता और लिपिमूलक व्याख्या उनको एक महत्त्वपूर्ण विशेषता है । ³

शैवदर्शन में आत्मस्वरूप प्रत्यभिज्ञान अथवा आत्मोपलब्धि के तीन प्रमुख उपाय शाम्भव, शाक्त और आणव बताये गये हैं । शाम्भवोपाय में इच्छाशक्ति के प्रधानता होती है और शाक्तोपाय में ज्ञान शक्ति को । ⁴ आणवोपाय के क्रियोपाय होने के कारण चेतना को अणु अवस्था से सम्बन्ध रहता है । इस उपाय में मुख्यतः ध्यान साधना, प्राणसाधना, देहसाधना और वाह्यसाधना आती है । इनमें स्थूल और सूक्ष्म के भेद से प्राणसाधना के दो रूप हैं । प्राण, आपान, व्यान, समान, उदान यह पाँचों स्थूल प्राण के ही रूप हैं, जिन्हें उच्चारण या उच्चार कहा जाता है । ⁵ इस प्रकार

1. रघुवंशम्, 121

2. उद्गात प्रणवो यासां न्यायेस्त्रिभिरुदोरणम् ।

कर्म यज्ञः फलं स्वर्गस्तासां त्वं प्रभवो गिराम् ॥

कुमारसम्भवम् : 2/12

3. द्रष्टव्य - राजकुमारगुप्त, पाद टिप्पणी संख्या-1 पृ. 83

4. त्रैविध्यं शाम्भवशाक्ताणव भेदेन समावेशस्य ।

तन्त्रसार : पृ. 7

5. प्राणः स्थूलः सूक्ष्मश्च आय उच्चारणात्मा उच्चारणं च पंच प्राणाद्या वृतयः ।

सूत्रमस्तु वर्णशब्दवाच्यः ।

तन्त्रसार : पृ. 35

वाक् आत्मस्वरूप प्रत्यभिज्ञान में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

1. वाक् के रूप :

शब्द को शिवात्म कहते हुए वाक् के चारो, परा, पश्यन्ती, मध्यमा वैरवरी रूपों में प्रत्यभिज्ञादर्शन परमतत्त्व को नाना स्थितियों को व्याख्या करता है। वाणी विश्लेषण की प्रक्रिया से परे है। ऋग्वेद काल से वाणी के गूढ़ एवं रहस्यमयी स्वरूप को वर्णित किया जा रहा है। ऋग्वेद में वाणी के लिए 'वाक्' तथा 'गी' का प्रयोग मिलता है। वाक् को परमशक्तिशाली देवी के रूप में स्वीकार किया है। परन्तु वह वाक् देवी कौन है यह स्पष्ट नहीं किया गया है। ऋग्वेद में वाक् ने स्वयं अपने स्वरूप को व्यक्त किया है।¹ सायणाचार्य के अनुसार भारती, सरस्वती तथा इडा वाक् या वाणी का अधिष्ठात्री देवियाँ हैं। कौन सी देवी किस वाणी का प्रतिनिधित्व करती है यह ऋग्वेद में स्पष्ट रूप से नहीं बताया गया है। वस्तुतः वाणी अपने मूल रूप में एक ही है विभिन्न अवस्थाओं में विभिन्न रूप धारण करने के कारण इसके नाम भिन्न हैं। इडा-सरस्वती, भारती, भू, भुवः तथा स्वः की देवी है। यह तीनों ही बैरवी हैं।

ब्राह्मण ग्रन्थों में भी वाणी की दिव्यता को स्वीकार किया गया है। ऐतरेय आरण्यक² के अनुसार वाक् वेदों की जननी है तथा सम्पूर्ण चराचरात्मक सृष्टि इसी में समाहित है।² औपनिषद् काल में वाणी की व्याख्या दार्शनिक धरातल पर की गई है। इनके अनुसार यह श्वास का रूप धारण करती है ई इडा पिंगला तथा सुषम्ना के माध्यम से योग विद्या को जन्म देती है। वाक् की उत्पत्ति या स्वरूप पर पुराणों में जो चिन्तन मिलता है, वह वेदों और उपनिषदों से मिलता जुलता है। पुराणों के अनुसार वाक् स्वतः ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न मानी जाती है। वाक् के तीन पद माने जाते हैं यह है पश्यन्ती मध्यमा बैरवी इन्हें भु भवः तथा स्वः या इडा, सरस्वती और भारती भी कहा जाता है।

1. बृहस्पते प्रथमं वायो अग्रं यत् प्रैरत नामधेयं दधानात्

यदेषां श्रेष्ठं यदरिप्रमासोत् प्रेरणा तदेषां निहितं गुहाविः।

ऋग्वेद : 10. 71. 1

2. ऐतरेय आरण्यक : 3. 1. 6

शैवदर्शन में वाक् के चार रूप माने गये हैं परा, पश्यन्तो, मध्यमा और वैखरो। ऋग्वेद में भी अनेक ऐसे स्थल हैं जहाँ वाणो के चार रूपों का वर्णन मिलता है :

यत्त्वारि वाक् पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनोषिणः।

गुहा त्रिणि निहिता नेद्गयन्ति डरोयं वाचं मनुष्यावदन्ति॥¹

इस 'यत्त्वारिवाक् पदानि' को व्याख्या आचार्य सायण ने इस प्रकार करते हैं :

'परापश्यन्तो मध्यमावैखरोति यत्त्वारिति एकैव नादात्मिका वाक् मूलधारा-
द्वदिता सती परेत्युच्यते नादस्य च सूक्ष्मत्वेन दुर्निरूपत्वात्।'

ब्राह्मण ग्रन्थों में वाक् के परा, पश्यन्तो, मध्यमा, वैखरो चार रूप प्राप्त होते हैं 'योगदर्शन' में भी नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात के नाम से वाक् के चार रूप मिलते हैं। शैवदर्शनानुयायी कालिदास भी वाक् के चार रूप मानते हैं :

पुराणस्य कवेस्तस्य चतुर्मुख समोरिता।

प्रवृत्तिशतोच्छब्दानां चरितार्था चतुष्टयो॥²

शब्द को ब्रह्म कहकर वाक् के परा-पश्यन्तो-मध्यमा-वैखरो रूपों में ब्रह्म को नाना स्थितियों को व्याख्या करना अकेले शैवदर्शन को ही विशेषता नहीं है। इस दर्शन ने इतना भर किया है कि अपने सिद्धान्त के अनुसार मानो नाना चित्-स्थितियों के साथ उन वाक् रूपों का सामंजस्य स्थापित कर लिया है।³ इस समन्वित दृष्टिकोण को भपनाने के कारण शैवदर्शन परमशिव की विभिन्नावस्थाओं-शिव, सदाशिव, ईश्वर, अनन्त का भी वाक् के उपर्युक्त चार रूपों सामंजस्य घटित करा सकता है। परा-शिव है, पश्यन्तो सदाशिव, मध्यमा-ईश्वर है और वैखरो अनन्त।

विश्वविकास को प्रक्रिया में प्रत्यभिज्ञादर्शन परावाक् सम्बन्धो सिद्धान्त स्वीकार करता है। परावाक् भगवतो चित् शक्ति है। अथवा शिव का पररूप है। परमतत्त्व को परावाग रूप कहा गया है।⁴ परा अभेद भूमि है। इसमें भेद दृष्टि को सम्भावना भर

1. ऋग्वेद : 1.164.45

2. कुमारसम्भवम्, : 2/17

3. कामायनी पर काश्मोरो शैवदर्शन का प्रभाव, पृ. 85-86

4. चितिः प्रत्यवमर्शात्मा परा वाक् स्वरसोदिता।

स्वातन्त्र्यमेतन्मुख्यं तदैश्वर्यं परमात्मनः॥

ईश्वरप्रत्यभिज्ञाकारिका : 1-5-13

निहित है। परावाक् विकास की प्रक्रियामें अनेक दशाओं से होकर गुजरती है। अथ संस्कृत वर्णमाला के वर्णों में विभक्त हो जाती है। इन्हीं वर्णों में शिव तथा शक्ति के अविच्छिन्न सम्बन्ध को कल्पना की जाती है।

आकारः शिव इत्युक्तस्थकारा शक्तिरुच्यते।¹

परावाक् अन्य तीनों शक्तियों का उद्गम बिन्दु है। यह शुद्धमर्ममयी वाणी सभी प्रकार की देशकालादि-सोमाओं से परे है :

अदेशकाल कोलतायां संविदा निरुद्धा।²

2. शक्तिचक्र :

प्रत्यभिज्ञादर्शन में शक्तिचक्र से अभिप्राय वर्णों के समूह से है। वर्णों को समूह हो परावाक्शक्ति हो शक्ति है। मा त्विनो विजय में इसे गुरुवक्त्र कहा गया है :

‘शक्तिचक्र तदेवोक्तं गुरुवक्त्रं तदुच्यते।’³

मातृकाचक्र संबोधाः⁴ सूत्रानुसार स्वर अन्तर्जगत् के प्रतीक हैं तथा हल् वाह्य जगत् के। ‘ह’ में अमरत्व का बोध विद्यमान है तथा ‘ध’ जोवानाङ्कुर है।

व्यवहारिक जगत् में वाक् का प्रयोग विस्तृत अर्थ में होता है। सभी कुछ वाणी से नहीं कहा जाता परन्तु जो तत्त्व कुछ अर्थ प्रकट करें उसे भी वाक् या वाचन कहा जा सकता है। उदाहरणार्थ कालिदास मालविका मे मनोहर भाव नृत्य को अन्तर्निहित वाचन कहते हैं।⁵ जो बिना बोले सारे अर्थ सूचित कर देते हैं। अतः जो कुछ भी अभिव्यक्ति का माध्यम है वह वाक् है। नृत्य, नृत्य, नाटक, चित्र, मूर्ती, वस्तु यहाँ तक कि सम्पूर्ण विश्व, वस्तुजगत्भावजगत् वाक् है। प्रत्यभिज्ञादर्शन के अनुसार सम्पूर्ण सम्पूर्ण सृष्टि उस परावाक् की लोला है। वाक् शब्द और अर्थ का ज्योतिर्मय रूप है।

1. परात्रिशिकाविवृति में पृ. 99 पर उद्धृत शिवदृष्टि की उक्ति।

2. उद्धृत, परात्रिशिका विवरण, पृ. 4

3. शिवसूत्र विमर्शिनो : पृ. 60 पर उद्धृत

4. शिवसूत्र : 7

5. मालविकाग्निमित्रम् : 2/8

शब्द का अदि अक्षर है। अक्षर परम्ब्रह्म होने से अविनाशी है यह आत्मा की भाँति नित्य है। आत्मा परमत्त्व से भिन्न नहीं है यही वाक् का अमर स्वरूप है। कालिदास ने भी शिव शक्ति, शिव-पार्वती के सामरस्य की उपमा देने के लिए वाक् को ही उपमान बनाया है।¹

1. रघुवंशम् : 1/1, चिदगगनचन्द्रिका, श्लोक 116

चतुर्थ अध्याय

जगत् सम्बन्धो विविध तत्त्व

चतुर्थ अध्याय

जगत्सम्बन्धी विविध तत्त्व

१. सृष्टि :

सृष्टि का अभिप्राय समग्र भाव जगत् का सर्जन या स्फुटीकरण है।
प्रत्यभिज्ञादर्शन में सृष्टि की स्थिति नित्य मानो गई है। तथा सृष्टि के दो प्रकार बताये गए हैं :

- अ. शुद्धसृष्टि § शुद्ध अध्वा §
- ब. अशुद्धसृष्टि § अशुद्ध अध्वा §

शिव, शक्ति, सदाशिव, ईश्वर और सदैविद्या तक सृष्टि शुद्ध मानी जाती है। क्योंकि इन तत्त्वों के रूप में आने तक परमशिव का स्वरूप शुद्ध रहता है जब परमशिव अपने शुद्ध अध्वा के रूपों को अवतरित करने के लिए माया तत्त्व बनता है और पाँच कंचुक तत्त्वों के रूप में आता है तब वह अशुद्ध अध्वा के रूप में परिवर्तित हो जाता है। शिव तत्त्व पुरुष बन जाता है। शक्ति ही प्रकृति बन जाती है। जब पुरुष अपनी प्रकृति के सहयोग से पंच स्थूल भूतों तक को सृष्टि का विस्तार कर लेता है तो उसकी संज्ञा जोष की हो जाती है। वह अपनी प्रकृति के स्थूल उन्मोलित रूप का आनन्द लेता है, उसका अहं बोध इदं में परिवर्तित हो जाता है।

• क. सृष्टि का उन्मोलन और निमोलन :

प्रत्यभिज्ञादर्शन के अनुसार सृष्टि का उन्मोलन और निमोलन अथवा आविर्भाव और तिरोभाव होता है। इस दर्शन के अनुसार परमशिव में ही जोष और जगत् की पारमार्थिक सत्ता विद्यमान है। जब परमशिव आत्म क्रीडार्थ उद्यत होता है तब उसका सृष्टि के रूप में उन्मोलन होता है। जब वह आत्मक्रीडा से विश्राम चाहता है तो अपनी सृष्टि का निमोलन कर लेता है।

जगत् :

संसार में चेतन अचेतन तत्त्वों की सत्ता उनका स्वस्व तथा परमतत्त्व से उनका सम्बन्ध जगत् के स्वरूप के विविध पक्षों पर चिन्तन के लिए जिज्ञासा को जन्म देता है।

जगत् के तात्त्विक विचार की समस्या परमतत्त्व के स्वरूप के विश्लेषण की भूमिका है। इस अभिरामशाली जगत् का सृष्टा कौन है, तथा उसका स्वरूप कैसा है, सर्वप्रथम यही प्रश्न जन्म लेता है।

अद्वैतवेदान्त के अनुसार तो जगत् का सृष्टा पूर्णतः शान्त, शुद्ध, निर्विमर्श और अकर्ता है। प्रत्यभिज्ञादर्शन में इस जगत् का सृष्टा परमतत्त्व शिव प्रकाशविमर्शमय, ज्ञाता तथा स्वतन्त्र कर्ता है। शिव अपनी शक्ति से जगत् को सृष्टि और संहार करता है। प्रत्यभिज्ञा दर्शन के अनुसार विश्व का विकास, चिति, परावाक् तथा पराशक्ति जो परमशिव के साथ सकात्मना अवस्थित है, का हो क्रिया कौतुक है।

•क. जगत् का कारणत्व :

प्रत्यभिज्ञा दर्शन में जगत् का प्रमुख कारणात्त्व स्वतन्त्र कर्ता है। शक्तिमान शिव में जब सृष्टि की इच्छा होती है तो वह अपने से अभिन्न कर्तृशक्ति द्वारा सृष्टि करने में प्रवृत्त होता है। परमशिव, इच्छाशक्ति स्वातन्त्र्य, विमर्श किसी को भी सृष्टि का कारण कहा जा सकता है क्योंकि इस दर्शन में नित्य सामरस्य की अवस्था है। शिव स्वात्मभित्ति पर स्वेच्छा से अपने ही द्वारा अपने से अभिन्न सृष्टि का निर्माण करता है :

‘स्वेच्छया स्वभित्तौ विश्वमुन्मीलयति।’¹

इस प्रक्रिया में वही निमित्त कारण है वही उपादान कारण है। उसे अन्य कारणों की अपेक्षा नहीं रहती है, वह स्वैरो है :

स्वयम् आत्मोयम् उपकरणम् ईरयति स्वकर्तव्येषु अवश्यं तच्छीलः।

स्वयं च आत्मानमोरयति न पुनः स्वकर्तव्य प्रेरकमपेक्षते इति स्वैरो स्वतंत्रः।²

संसार को रचना हेतु उसे किसी उपादान की आवश्यकता ही नहीं है वह तो केवल ईश्वर की क्रिया शक्ति या इच्छा से ही उत्पन्न हो जाता है। उत्पलदेव ने भी कहा है :

निरूपदान सम्भारमभित्तावेव तन्वते।

जगच्चित्रं नमस्तस्मै कलाशलाध्यायशूलिने॥³

1. प्रत्यभिज्ञाहृदयम्, सूत्र 2

2. ईश्वरप्रत्यभिज्ञा विमर्शिनो, 14.1

3. श्रीबोधपंचदशशिकामे उद्धत उक्ति, पृ. 6

• य. अधिष्ठान :

समस्त दर्शनों में जगत् का अधिष्ठान तत्त्व दर्शन अनुसार वही होता है, जिससे विश्वनिवृत्त्यभिज्ञा दर्शन के अनुसार विश्व शिव में ही विप्रान्त है-

यत् परमतत्त्वं तरिमन्विभातिपदत्रिंशददात्मजगत् ।¹

संविद में विप्रान्त होकर ही भाव प्रकाशमान होते हैं :

संविद विप्रान्ता हि भावाः प्रकाशमानाः भवन्ति ।²

भावों को यह प्रकाशमानता उसके संविद से भिन्नता नहीं अभिन्नता नहीं है क्योंकि प्रत्यभिज्ञा दर्शन में द्वैतभाव नहीं है :

संविन्निष्ठा विषयव्यवस्थितिः ।³

• ग. सृष्टि का प्रयोजन :

सृष्टि रचना का प्रयोजन भिन्न भिन्न है। अद्वैतवादी शंकराचार्य के अनुसार इस सृष्टि में लीला के अतिरिक्त परमेश्वर का कोई सूक्ष्म प्रयोजन नहीं है क्योंकि ब्रह्म निष्काम है।⁴

प्रत्यभिज्ञा दर्शन में भी लीला को ही सृष्टि का प्रयोजन माना है। परन्तु प्रत्यभिज्ञा दर्शन के दार्शनिक वेदान्त के लीला सिद्धान्त को मानकर उसकी व्याख्या वेदान्तीयों से भिन्न करते हैं। इस दर्शन में लीला का अर्थ है स्वाभाव या स्वातन्त्र्य। विश्व रूप में आभासित होना स्वातन्त्र्य मूलक स्वाभाव है। अद्वैतवेदान्त और प्रत्यभिज्ञा दर्शन में इन दोनों दर्शनों में सृष्टि प्रयोजन लीलामात्र माना गया है परन्तु दोनों दर्शनों की दृष्टि में भिन्नता यह है कि प्रत्यभिज्ञा दर्शन परमशिव में ही इस

1. परमार्थसार, 11, पृ. 15

2. ईश्वरप्रत्यभिज्ञा विवृतविमर्शिनी, : 1, पृ. 5

3. परमार्थसार, पृ. 92

4. यादनाम लीलास्वपि किञ्चित्सूक्ष्म प्रयोजनमुत्प्रेक्ष्येत, तथापि नैवात्र किञ्चित् प्रयोजनमुत्प्रेक्षितुं शक्यते, आप्तकामश्रुतेः ।

लीलारवभाव की विश्रान्ति मानता है। शंकरमत में मायोपहित ईश्वर का स्वभाव लीला है न कि नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्तस्वाभाववाले ब्रह्म का।

शिवदृष्टि¹ में भी कहा गया है कि परमेश्वर को यदि लीला हेतु सृष्टि रचना में प्रवृत्त माना जाता है अथवा लोकानुग्रह उसका प्रयोजन स्वीकारा जाये तो यह विचार विसंगतियों से पूर्ण होगा क्योंकि सृष्टि में जो वैषम्य दुःख है उसके लिये किसे उत्तरदायी माना जायेगा। इससे तो परमेश्वर असफल प्रवृत्तिकारो सिद्ध होगा, जिसने कल्याण के लिए कार्य आरम्भ किया था परन्तु उसका फल दोषपूर्ण निकला। यदि परार्थ और लोककल्याण के अतिरिक्त स्वार्थ हेतु सृष्टि रचना मानी जाए तो ईश्वर स्वार्थी माना जाएगा।

उत्पलाचार्य² के अनुसार सृष्टि रचना या आभास उस परमतत्त्व को किसी अपूर्ण इच्छा को पूर्ति नहीं है। वह किसी प्राप्तव्य को आकांक्षा नहीं करता क्योंकि प्रवृत्ति के बाद जो कुछ भी प्राप्तव्य है वह स्वयं उसमें पूर्णतः विद्यमान है। जगत् शिवात्म होने से शिव में पूर्णतः विद्यमान का बाहरीअभास है। कोई ऐसी वस्तु नहीं जो परमार्थः उससे बाह्य हो सभी कुछ शिव से उत्पन्न होने के कारण शिव रूप है— अतएव च न बाह्य नाम किंचन परमार्थत्वे विधत्ते।³

•घ. जगत् को सत्यता :

जगत् को सत्यता के सम्बन्ध में अद्वैतवादी दार्शनिकों के मतों में भेद है। शंकराचार्य के गुरु आचार्य गौडपाद ने जगत् को मिथ्या माना है। उनके अनुसार जगत् स्वप्न की भाँति है जिस प्रकार स्वप्न में देखे गए भाव मिथ्या होते हैं क्योंकि जाग्रतवस्था में प्रत्यक्ष होनेवाला यह जगत् भी परमार्थ दृष्टि से मिथ्या है।⁴

1. शिवदृष्टि वृत्ति : 1.12

2. प्रवृत्तिकारो हि तदा प्रवृत्ति करोति यदि स्वस्मात्किंचिदा धिक्त्वा दिकमनुभवति, यदि च स्वयमेव स तथा भूतः केन नियमित्तेन प्रवृत्ति करोति।

शिवदृष्टिवृत्ति : 3.51

3. शिवदृष्टिवृत्ति : 4.13

4. वैतथ्य सर्वभावनां स्वप्नमाहुर्मनोषिणः
स्वप्नजागरितस्थाने द्वेकमाहुर्मनोषिणः॥

माण्डूक्यकारिका : 2.1

माण्डूक्यकारिका : 2.5

शंकराचार्य¹ जगत् को मिथ्या मानते हैं। शंकर के अनुसार जगत् परमार्थ दृष्टि से असत् है किन्तु व्यवहार रूप में सत् है। क्योंकि जगत् को सत्यता पारमार्थिक अवस्था में बाधित हो जाती है त्रिकाल सत्यावस्था में नहीं रहती। इनके अनुसार जगत् को न सत् कहा जा सकता है और न असत् सत असत् से परे होने के कारण यह अनिवर्चनीय है।

प्रत्यभिज्ञादर्शन के चिन्तन के प्रत्येक क्षेत्र में सामरस्य की अवस्था है।

प्रत्यभिज्ञादर्शन में जगत् सत्य भी है तथा जगत् पारमार्थिक सत्य नहीं भी है। इस मत में सत्ता के द्विविध प्रकार हैं-पारमार्थिक तथा व्यवहारिक। प्रत्याभिज्ञादर्शन के दार्शनिकों के अनुसार जब सम्पूर्ण जगत् शिवमय है तब सत्य असत्य का भेद कोई अर्थ नहीं रखता :

तथा च सर्वत्रैक्यं संसारव्यवहाराय संज्ञामात्रं तत्कल्पितं भवति।²

3. कारणवाद :

प्रत्यभिज्ञादर्शन कारण एवं कार्य में तात्त्विक भेद नहीं मानता जो भी कारण में है उसे बाहर आभासित कर देना ही कारण का कार्य रूप में प्रतीत होता है। इस दर्शन के कारणवाद का परमवैशिष्ट्य यह है कि यह सभी कार्यों का वास्तविक कारण शिव को मानता है यह कारण और कार्य को अलग-अलग स्वीकार नहीं करता।

प्रत्यभिज्ञादर्शन को दृष्टि भी मूलतः सत्कार्यवादो है। यह कार्य को कारण में सत् मानता है। इस दर्शन में कारण है-कर्ता और कार्य है, उस शक्तिमान कर्ता का स्वेच्छापूर्वक किया गया बहिराभासन्। इसलिए कर्म रूप कार्य कर्तृत्व कारण में सिद्ध है।

प्रत्यभिज्ञादर्शन के तत्त्वचिन्तन में वस्तुतः जड़त्व के लिए कोई स्थान नहीं है। इस मत में सभी चेतन और शिवात्मक रूप है। इस दर्शन को यह मान्यता है कि जो कुछ जड़ है वह असत् है और जड़ या असत् किसी का कारण नहीं हो सकता। जड़वस्तु

1. ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या,

विवेकचूड़ामणि : 20

2. शिवदृष्टि वृत्ति : 3-47

को जड़ का अथवा किसी का भी कारण नहीं माना जा सकता। कार्यकारण भाव में जड़ का कोई स्थान नहीं होता। जड़ में अपेक्षाबुद्धि सम्भव न होने के कारण जड़ अपने में ही स्थित रहता है। यह जड़तत्त्व किन्हीं दो जड़ों को मिलाने या उनमें अनुसन्धान करने को शक्ति नहीं रखता :

‘इह खलु अपेक्षाशून्यत्वात् जड़ानां कार्यकरण भावो न भवेत्।’¹

सांख्यादि अन्य दर्शनों में जिसे जड़ कहा गया है उसे काश्मीर शैव दर्शन में जड़ के स्थान पर चेतन माना गया है। पाषाणादि जिन्हें सामान्यतः जड़ कहा जाता है उनको सत्ता प्रत्यभिज्ञादर्शन में चेतन है। ऐसा नहीं कि अन्य दर्शनों द्वारा मान्य जड़तत्त्व प्रत्यभिज्ञा दर्शन में नहीं है। वह है तो किन्तु उनका स्वरूप चेतन है। यह दर्शन वृक्षादि को चेतन मानता है। चेतन सत् इसलिए है क्योंकि वह परमशिव से अभिन्न होने के कारण आभासनशील है तत्त्वगुण उसे आभासन के लिए प्रेरित करता है। पाषाण में भी सत्त्वविद्यमान है पर उसमें तम का आधिक्य है। प्रत्यभिज्ञा दर्शन पाषाण इत्यादि वस्तुओं को अत्यन्त परिच्छिन्न आभासवाला मानता है। प्रकाश स्वरूप शिव को चेतना का प्रकाश ही जड़ एवं चेतन सृष्टि में व्याप्त है।

महाकवि कालिदास ने अपनी कृतियों में प्रत्यभिज्ञादर्शन के इन्हीं जगत् सम्बन्धी विचारों को प्रस्तुत किया है। प्रत्यभिज्ञा दर्शन के अनुसार सम्पूर्ण सृष्टि शिवरूप है। इसका शिव से उन्मोलन होता है और शिव में ही निमोलन हो जाता है। कालिदास भी सृष्टि को इस उन्मोलन निमोलन क्रम को बताते हैं :

आत्मानमात्मना वेत्ति सृजत्यात्मानमात्मना।

आत्मना कृतिना च त्वामात्मन्येव प्रलीयस्ते॥²

परमतत्त्व इस सृष्टि प्रक्रिया में अपने आपको ही उत्पन्न करता है और फिर अपने आप में ही लीन कर लेता है। विश्व को विभिन्न भूमिकाओं के प्रच्छादन तथा उन्मोलन का तारतम्य इसी चिदात्मा का स्वाभाव है। प्रकाशात्मा शिव ही सृष्टि

1. तन्त्रालोकविवेक, 9.13

2. कुमारसम्भवम् : 2/10

अवस्था में विश्वाकार हो जाता है। कालिदास अभिज्ञानशाकुन्तलम् ¹ के नान्दी श्लोक में शिव के इस वैभव का ही वर्णन करते हैं।

या सृष्टिः स्रष्टराद्या वहति विधिद्वत या हविर, या च होत्रो,
ये द्वे कालं विधत्तः, श्रुतिविषयगुणा या स्थितां व्याप्य विभ्रम्।
यामाहुः सर्वबीजप्रकृतिरिति, यया प्राणिनः प्राणवन्तः,
प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरौशः ॥

सम्पूर्ण जगत् के सृष्टा का स्वस्व कालिदास ने इस प्रकार बताया है x

जगदयो निरयो निस्त्वं जगदन्तो निरन्तकः।

जगदादिरनादिस्त्वं जगदोशो निरोश्वरः ॥ ²

वह परमतत्त्व जगत् का कारण है, पर स्वयं किसी से उत्पन्न नहीं हुआ है।

जगत् का अन्त है परन्तु वह निरन्तक है।

परमतत्त्व ने जल के अन्दर जिस बीज का वपन किया था उसी से स्थावर और जंगम स्वस्व वाला जगत् उत्पन्न हुआ है।

यदमोघमपात्रन्तररुप्तं बीजमज त्वया।

अत्सचराचरं विश्वं प्रभवस्तस्य गीयसे ॥ ³

प्रत्यभिज्ञादर्शन की मान्यतानुसार जगत् रूप कार्य अपने कारण से भिन्न नहीं है। इस जगत् का कारण शिव प्रकाशविमर्शमय, ज्ञाता तथा स्वतन्त्र कर्ता है। वह विश्व का सृजन पालन और संहार करता है। प्रत्यभिज्ञादर्शन के अनुसार जड़ और चेतन एक ही मूल चेतन सत्ता के दो रूप हैं :

तत्र आभास-रूपा एव जडचेतनपदार्थाः।

कालिदास भी इस श्लोक में इसी भाव को व्यक्त करते हैं कि यह स्थावर

1. अभिज्ञानशाकुन्तलम् : 1/1

2. कुमारसम्भवम् x 2/10

3. कुमारसम्भवम् : 2/5

और जंगम सृष्टि शिव से हो उत्पन्न हुई है वह जगत् का पिता है :

यावन्त्येतानि भूतानि स्थावराणि चराणि च।

मातरं कल्पयन्त्वेनामोशो हि जगतः पिता ॥ ¹

शिव हो विश्व को आत्मा है :

ऐहि विश्वात्मने वत्से भिक्षासि परिकल्पता । ²

प्रत्यभिज्ञा दर्शन के तत्त्वविचार में वस्तुतः जड़तत्त्व के लिए कोई स्थान नहीं है। यह दर्शन कार्य और करारणा में भेद नहीं मानता है। जब सभी का कारण शिव है जो सत् है तब उससे उत्पन्न जगत् कार्य असत् {जड़} हो ही नहीं सकता। जड़ का अर्थ अशिव, असत् है। यह दर्शन जगत् को शिवात्म मानता है और जड़ कारणवाद को अस्वीकार करता है।

प्रत्यभिज्ञादर्शन में जड़ का लक्षण प्रकाश को परिछिन्नता बताया गया है। ³ प्रकाश { चित्प्रकाश } को परिछिन्नता के कारण शरीर इत्यादि वस्तुओं को अह समझने वाले जीवों को जड़ कहा गया है। जीव के ज्ञान और मनोमय कोश में जड़ता भाव आ जाने के कारण वह पदार्थों में जड़भाव को अनुभूति करने लगता है। वस्तुतः पदार्थ जड़ नहीं है। शिव के प्रकाश से प्रकाशित सृष्टि में जड़भाव हो ही नहीं सकता कालिदास भी लिखते हैं कि महादेव तमोगुण के पार में ज्योति स्वरूप हैं :

स हि देवः परं ज्योतिस्तमः पारे व्यवस्थितम् ।

परिछन्नप्रभावर्द्धिन मया न च विष्णुना ॥ ⁴

कालिदास ने प्रत्यभिज्ञादर्शन को मान्यतानुसार अपनी कृतियों में जड़कारणवाद को नकारा है। जीव को जड़ बुद्धि के विनाश हेतु उन तत्त्वों को जड़भाव का अभाव दिखाया है, जिन्हें सामान्यतः जड़ कहा जाता है और कालिदास ने अपने प्रकृति

1. कुमारसम्भवम् : 6/80

2. कुमारसम्भवम् : 6/88

3. परिछिन्नप्रकाशत्वं जडस्य किल लक्षणम् । तन्त्रसार : भाग 6, पृ. 116

4. कुमारसम्भवम् : 2/58

चित्रण द्वारा इस सनातन सत्य का साक्षात्कार कराने का प्रयास किया है कि सम्पूर्ण सृष्टि अपने कारण §शिव§ को महिमा से प्रकाशित है। साधारण अर्थों में जिसे कालिदास का प्रकृति चित्रण कहा जाता है वह व्यापक अर्थ में परमशिव की महिमा का गुणगान है। जब जीव को यह ज्ञान होता है कि सभी कुछ शिव की शक्ति का प्रकाशित रूप है और मैं भी उसी के प्रकाश से प्रकाशित हूँ तो उसका अहंबोध इंद में परिवर्तित हो जाता है। वह तादात्म्यता का अनुभव करते हुए आनन्द को प्राप्त करता है।

सभी जड़चेतन पदार्थों का कारण शिव है- कालिदास की कृतियों में यही कारणवाद मुखर है। मेघदूतमुखण्डकाव्य जिसे दूत काव्यों का प्रकाश स्तम्भ कहा जाता है इसी कारणवाद का समर्थन करता है।

मेघदूतम् में विरहो यक्ष मेघ को अपना सन्देशवाहक बनाता है जो एक प्राकृतिक उपादान है। मेघ के सन्देशवाहक बनने की बात मन में शंका जगाती है, जिसे कालिदास ने इस प्रकार व्यक्त किया है :

धूम ज्योति सलिल मरुतां सन्निपातः क्व मेघः
सन्देशार्था क्व पटुकरणै प्राणिभिः प्रापणीयाः।
इत्यौत्सुक्याद परिगणयन् गुह्यकस्तं ययाचे
कामार्ता हि प्रकृति कृपणाश्चेतनायेतनेषु॥

परमतत्त्व ज्ञानी कालिदास मेघ के दूत बनने सम्बन्धी समस्त मानवसुलभ शंकाओं का समाधान करते हुए लिखते हैं :

जातं वशि भुवनविदिते पुष्करावर्तकानानां
जानामि त्वां प्रकृतिपुरुषं कामरूपं मघोनः।
तेनर्थित्वं त्वयि विधिविशाद इरबन्धुर्गतो हं
याञ्चा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा॥²

1. मेघदूतम् : पूर्वमेघ : 5

2. मेघदूतम् : पूर्वमेघ : 6

यक्ष परमतत्त्व का ज्ञाता है वह मेघ को चेतनता को जानता है। अतः मेघ से संदेश ले जाने की बात वह बाद में करता है। पहले पर्वतीय घमेली पुष्पों से उसकी अर्चना करता है :

त प्रत्यग्रैः कुटजकुसुमैः कल्पितार्घ्या तस्मै

प्रोतः प्रोतिमुख वचनं स्वागतं व्याजहार ॥ ¹

क्योंकि वह जानता है कि मेघ अचेतन नहीं है। पुष्कर और आवर्तक मेघकुलों में उत्पन्न इन्द्र का प्रधान पुरुष है। यक्ष के द्वारा कहा गया 'जानामि त्वां प्रकृति-पुरुषं कामरूपं मघोनः' इस शंका को निर्मूल कर देता है कि मेघ भी अचेतन हो सकता है।

यक्ष मेघ को अपनी प्रिया के पास संदेश देकर अवश्य भेज रहा है परन्तु वह मेघ के कारण मूलतत्त्व का दर्शन पहले करा रहा है। उसका संदेश लक्ष्यस्थान पवित्र है। मेघ ऐसे भवन में पहुँचेगा जिसके उद्यान में स्थित शिवजी की मूर्ति की शिरचन्द्र कला चारों ओर चाँदनी बिखेर रही हो :

गन्तव्या ते वसतिरलका नाम यक्षेश्वराणां

बाह्योद्यानस्थितहर शिरश्चन्द्रिकाधीतहर्म्या । ²

चाँदनी का वर्ण श्वेत है। श्वेत सत् या पवित्रता का प्रतीक है। मेघ कृष्णवर्ण का है। वह अपने कारणाभूत सत् से अभिन्न होने के कारण सत् को ही प्राप्त करेगा। कालिदास ने जड़कारणवाद को नकारने हेतु प्रकृति के कण-कण में चेतना का प्रसार दिखाना चाहा है, जिसके लिए कालिदास ने मेघतत्त्व को प्रतिनिधि बनाया है। क्योंकि वह सामान्य तत्त्व जिन्हें अन्य दर्शन अचेतन मानते हैं, प्रत्यभिज्ञादर्शन में चेतन हैं। उदाहरण के लिए श्लोक में कवि मेघ को चेतनता का साक्षात्कार करता है :

कर्तुं यच्च प्रभवति महीमुच्छिन्नोन्ध्रामबन्ध्यां

तच्छ्रुत्वा ते श्रवणसुभगं गर्जितं मानसोत्काः । ³

1. मेघदूतम्: पूर्वमिध : ५

2. मेघदूतम्: पूर्वमिध : 7

3. मेघदूतम्: पूर्वमिध : 11

यह मेघ ही तो है जो सूखे हुए तृणांकुरों को हरितवर्णी कर देता है जो सुप्त चेतन में चेतनता का विस्तार करता है। वह अचेतन कैसे हो सकता है। मेघ तो गतिम है। एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाता है। उसको गर्जना सार्थक है जो बगुलियों को गर्भधारणा के लिए उकसातो है :

मन्दं मन्दं नुदति पवनाश्चानुकूलो यथा त्वां

वामाश्चायं नदति मधुरं चातकस्ते सगन्धः ।

गर्भाधानक्षणपरिचयान्नूनमाब्दमाला :

सेविष्यन्ते नयनसुमगं रवे भवन्तं बलाकाः ॥ ¹

चेतना को दृष्टि से वनस्पति, पशु, मनुष्य सब एक ही विश्व-व्यापी महाप्राण के पर अवरभेद हैं। मेघ जड़ नहीं हो सकता। वह अपनी छवि में अपने कारणत्व को प्रकट कर रहा है। वह श्यामलवपुधारो होने के कारण विष्णु अथवा कृष्ण के समान कान्तिवाला प्रतीत होता है :

रत्नछाया व्यतिकर इव प्रेक्ष्यमेतत् पुरस्ताद्

बात्मोकाग्रात् प्रभवति धनुषखण्डमाखण्डलस्य ।

येन श्यामं वपुरतितरां कान्तिमापत्स्यते ते

बहेणिव स्फुरितरुचिना गोपवेषस्य विष्णोः ॥ ²

तथा -

भर्तुः कण्ठच्छविरिति गणैः सादरं वोक्ष्यमाणः

पुण्यं यायास्त्रिभुवनगुरोर्धाम् चण्डोश्वरस्य । ³

जब वृषरूप मेघ शिव के लोक को चला तो कुमार के वाहन मयूर का नृत्य करना स्वाभाविक है।

जालोदगोर्णैरूपचितवपुः केशतंस्कारधूपै-

1. मेघदूतम्: पूर्व मेघ : 10

2. मेघदूतम्: पूर्व मेघ : 15

3. मेघदूतम्: पूर्व मेघ : 36

बन्धुप्रोत्था भवनशिखिभिर्दत्तनृत्तोपहारः । ¹

प्रस्तुत श्लोक में मेघ का आध्यात्म पक्ष सबल हो रहा है। मेघ की गर्जना के निकष उसको पार्थिवता से दिव्यता प्रदान करते हैं :

अप्यन्यस्मि जलधर महाकालमासाद्य काले

स्थातव्यं ते नयनविषयं भावदत्येति भानुः ।

कुर्वन्संध्याबलिपटहतां घूलिनः श्लाघनीया

मामचन्द्राणां फलमविकलं लप्स्यसे गर्जितानाम् । ²

कालिदास चैतन्य के विस्तार को किसी भी अवस्था में सीमित नहीं करना चाहते। चेतन अचेतन का भेद समाप्त होने पर ही सम्पूर्ण जगत् चैतन्यमय प्रतीत होने लगता है। कालिदास ने मेघ के सम्बोधनों द्वारा उसे मानवचरित में ढालने का प्रयास किया है। यक्ष ने मेघ को सखा, मत्प्रियार्थ, सुहृद, साधु इत्यादि कहकर पुकारा है।

पण्डितों को दृष्टि में मेघदूत काव्य का संदर्भ कुछ भी ही स्वयं कालिदास ने मेघदूत में बड़े कौशल से शिव के स्वरूप का सन्निवेश किया है। ³ चर-अचर जैसी काव्यनिक सीमाओं को पार कर एक ही चैतन्य के दर्शन कर लेने पर मेघ का संदेश सबके लिए चरितार्थ हो जाता है।

शैली के आधार पर ऋतुसंहारम् खण्डकाव्य , कालिदास को प्रथम रचना मानी जाती है। इसमें कवि ने षड्ऋतुओं का मनोहारो चित्रण किया है। क्षण-क्षण बदलता प्रकृति का रूप मानवोप व्यवहारों और क्रियाकलापों को उन के सहचर को भाँति प्रभावित करता है। बसन्त ऋतु में कुन्द के फूलों के चमकते हुए उपवन मोहमाया से दूर मुनियों के मन भी आकर्षित कर लेते हैं :

कुन्देः सविभ्रमवधु हसितावदतै-

रुदयो तितान्युपवना निमनोहराणि ।

1. मेघदूतम्: पूर्वमेघ 35

2. मेघदूतम्: पूर्वमेघ : 37

3. मेघदूत का अध्ययन : शिव का स्वरूप, डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल, पृ. 68

चित्तं मनुरपि हरन्ति निवृत्तरागं

प्रागेव रागमलिनानि मनांसि यूनाम् ॥ ¹

कुमारसम्भवम् महाकाव्य में जहाँ एक ओर भोग और मोक्ष का सामरस्य दिखाया गया है वहाँ दूसरी ओर शिव के शिवत्व का वर्णन भी इस कृति को आभा है।

सम्पूर्ण विश्व का आदि कारण शिव है। जिसका कारण शिव हो उसमें जड़ भाव हो ही नहीं सकता। मानव के ज्ञान और मनोमयकोश में जड़ता भाव आ जाने के कारण वह पदार्थों में जड़भाव को अनुभूति करने लगता है। वस्तुतः पदार्थ जड़ नहीं होता।

सांख्यादि दर्शनों में पाषाणादि को जड़ कहा गया है किन्तु प्रत्यभिज्ञादर्शन में उनको सत्ता जड़ नहीं घेतन है। कालिदास ने कुमारसम्भवम् में शिव के ऐश्वर्य का वर्णन किया है और सामान्यतः जड़ माने जानेवाले पदार्थों में भी शिवात्मक चेतना का प्रसार दिखाया है। उदाहरण के लिए वह हिमालय पर्वत का वर्णन करते हैं। भारत को उत्तरदिशा में स्थित हिमालय को देवता स्वरूप बताते हैं :

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः ।

पूर्वपरौ तोयनिधि वगाह्यस्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः ॥ ²

कुमारसम्भवम् में वह कारण से पूर्व कार्य का वर्णन कर रहे हैं। शिव से पहले हिमालय को महिमा बता रहे हैं- हिमालय पर्वतराज और देवतास्वरूप है उसपरस्मै का निवास है। देवयोनि विशेष या अणिमा आदि सिद्धि को पास हुए लोग इस हिमालय को चोटियों पर आश्रय लेते हैं। ³ इस पर्वत के छिद्रों से निकली हुई वायु कोचकों को पूर्ण करती हुई गान्धारग्राम से गान करनेवाले किन्नरों को मानो तान देने को इच्छा करती है। ⁴

1. अतुसंहारम् : 6/25

2. कुमारसम्भवम् : 1/1

3. कुमारसम्भवम् : 1/5

4. कुमारसम्भवम् : 1/8

कहों यह हिमालयपर्वत उत्तम मनुष्य की भौति शरणागत को रक्षा करनेवाला है। तो कहों लज्जित किन्नर सुंदरियों के लिए उस पर छाये मेघ पर्दे के समान हो जाते हैं।¹ हिमालय यज्ञ के साधनों सोमलता आदि को उत्पन्न करनेवाला तथा पृथ्वी का भार धारण करने में समर्थ बलवाला है।² हिमालय पर्वत को इस प्रकाशमानता का कारण यही है कि वह प्रकाशरूप शिव की दृष्टि है। चारों ओर फैली प्रकृति के अनन्त सौन्दर्य वैभव में कोई अज्ञात रहस्य नहीं है। संसार में दिखाई पड़नेवाली प्रकृति शिव की ही विभूति है क्योंकि वह द्रव, ठोस, स्थूल, सूक्ष्म, लघु, गुरु, व्यक्त अव्यक्त सभी कुछ है :

द्रवः संपातकठिनः स्थूलः सूक्ष्मो लघुर्गुरुः।

व्यक्तो व्यक्तेतरश्चासि प्राकाम्यं ते विभूतिषु॥³

वही परमेश्वर पृथ्वी आदि प्रकृति के रूपों में इस समस्त चराचर विश्व को धारण किए हुए है :

कलितान्योन्यसार्म्यैः पृथिव्यादिभिरात्मभिः।

येनेदं प्रियते विश्वं धुर्येयनिमिवाध्वनि॥⁴

करुणापति त्रिपाठी⁵ के अनुसार कवि की दृष्टि में मानव के चारों ओर फैली हुई विशाल प्रकृति, अनगिनत तारों से जगमगाता हुआ अनन्त अम्बर, अगाध समुद्र विशालवन, लता, वृक्ष, पल्लव, प्रसून फलादि, नदी, पशुपक्षी तथा अन्य अनन्त प्रकृति के पदार्थ केवल जड़ या बुद्धि और भावना से होन साधारण वस्तुएँ नहीं हैं, वरन् उसको भावुक कल्पना-यक्षुओं के सम्मुख वे सभी चेतन जान पड़ते हैं, वह सभी भावना शील हैं। मानवजगत् के प्रति उनके हृदय में सहानुभूति है, मानवपोड़ा से वे व्यथित होते हैं और मानव से सुखी।

1. कुमारसम्भवम् : 1/14

2. कुमारसम्भवम् X 1/17

3. कुमारसम्भवम् : 2/11

4. कुमारसम्भवम् : 6/76

5. कालिदास और प्रकृति, निबन्ध, पण्डित करुणापति त्रिपाठी, पृ. 56

विक्रमोर्वशीयम् में उर्वशी के वियोग में विलाप करते हुए पुरुरवा को देखकर समस्त प्रकृत सदृशानुभूति से आकुल हो उठता है। इसी प्रकार अभिज्ञानशाकुन्तलम् के चतुर्थ अंक में शकुन्तला को विदाइ के समय कालिदास ने प्रकृति का चित्रण किया है। शकुन्तला को विदाइ के समय तपस्वन विरहाकुल हो उठता है :

उदगलितदर्भकवलासृगाः परित्यक्तनतना मयूराः।

अपहतपाण्डुपत्रा मुंचत्यश्रूणीव लताः ॥¹

जड़ और मूल प्रकृति में इस प्रकार की शोककातरता तथा व्यथा व्याकुलता हो हो नहीं सकती। अन्तःकरणा के साथ स्पन्दित होनेवाली प्रकृति चेतन है।

महाकवि कालिदास की कृतियों का पुनोत्त प्रयोजन जोष को शिवात्मक चैतन्य का प्रत्यभिज्ञान कराना है।

पंचम अध्याय

कालिदास के नाटकीय कथानक एवं प्रत्यभिज्ञादर्शन

पंचम अध्याय

कालिदास के नाटकीय कथानक एवं प्रत्यभिज्ञादर्शन

नाटक जगत के व्यवहारों का प्रतिबिम्ब है। सामान्य मान्यता है कि नाटक अथवा महाकाव्य का कथानक लोकरुचि के अनुसार होना चाहिए। संस्कृत साहित्य में रामायण, महाभारत, पुराणों आदि को महत्त्वपूर्ण अथवा छोटी-छोटी घटनाओं को कल्पना के सम्मिश्रण से एक सुगठित, रोचक कथानक का रूप देकर नाटक और महाकाव्य लिखने की परम्परा चली आ रही है। भवभूति, भास आदि की रचनायें इसका उदाहरण हैं।

कालिदास ने अपने नाटकों के कथानक रामायण, महाभारत और पुराणों से लिए हैं। कवि ने मौलिकता के समावेश से इन कथानकों को रोचक प्रभावशाली बनाते हुए नाट्यक्षेत्र का प्रकाशस्तम्भ बना दिया है। कृतियों में आई मौलिकता से कवि के तत्त्वज्ञान का परीक्षण किया जाता है। आत्मप्रेरणा से ही काव्य का सृजन होता है। आत्मप्रेरणा आत्मदर्शन से प्रभावित होती है। कालिदास के तत्त्वज्ञान का परीक्षण उन्हें शैवमतावलम्बी ठहराता है। कालिदास के शैवमतावलम्बी होने में कोई सन्देह नहीं है।¹ कालिदास शैवप्रत्यभिज्ञादर्शन से प्रभावित थे। उनकी नाट्यकृतियों के कथानक भी शैवप्रत्यभिज्ञादर्शन से प्रभावित हैं।

प्रत्यभिज्ञादर्शन के अनुसार 'जोव' अपने वास्तविक स्वस्व को न पहचान कर द्वैतभाव के कारण दुःख पाता है। जब उसे अपने विस्मृत वास्तविक स्वस्व का प्रत्यभिज्ञान होता है तो उसका द्वैतभाव दूर होता है और उसे आनन्द की प्राप्ति होती है। इस दार्शनिक तथ्य को कवि ने अपनी नाट्यकृतियों 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्,' 'मालविकाग्निमित्रम्,' और 'विक्रमोर्वशीयम्,' में बहुत सुन्दरता से ढाला है। कालिदास के नाटकों को उनके कथानक और प्रत्यभिज्ञादर्शन की इस मान्यता से की गई साम्यता के आधार पर प्रतीकात्मक शैली में लिखे गये नाटक भी कह सकते हैं।

कालिदास ने इसके लिए नाटकों को ही क्यों चुना यह स्पष्ट है क्योंकि दृश्य-काव्य -श्रव्यकाव्य की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली होता है। महाकाव्य की अपेक्षा अधिक

प्रभावशाली होता है। महाकाव्य को अपेक्षा नाटकों में कथानक विस्तार को और घटनाओं के चमत्कारिक निर्वह को सुगमता से दर्शाया जा सकता है। कालिदास स्वयं नाटक के प्रयोजन को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि नाटक ही ऐसा उत्सव है जिसमें सबको एक सा आनन्द प्राप्त होता है।² और नाटक जगत् के कारणभूत शिव से उत्पन्न हुआ है अतः उससे अधिक समर्थ अभिव्यक्ति का कोई अन्य साधन हो ही नहीं सकता।

प्रत्येक धर्म या दर्शन का दो प्रकार का साहित्य पाया जाता है।

1. दार्शनिक साहित्य।

2. लौकिक साहित्य।

दार्शनिक साहित्य :

इन साहित्य में धर्म या दर्शन के प्रमुख सिद्धान्तों, तत्त्वों, आराध्य आदि को दार्शनिक पारिभाषिक शब्दावली के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है। इस प्रकार के साहित्य द्वारा किसी धर्म और दर्शन की स्थापना की जाती है।

लौकिक साहित्य :

लौकिक साहित्य उस धर्म अथवा दर्शन के किसी एक तत्त्व, सिद्धान्त या प्रमुख आराध्यदेव को आधार मानकर लिखा गया ऐसा साहित्य है जिसमें कथानक और पात्रों का आश्रय लिया जाता है और कथानक तथा पात्रों का लौकिकीकरण कर दिया जाता है। अश्वघोष रचित 'सौन्दरनन्द' महाकाव्य और 'शारिपुत्र-प्रकरण' में यह भाव मिलता है। इस प्रकार को साहित्य रचना अपने उद्देश्य में सफल होती है। मम्मट ने अपने काव्यप्रकाश में 'कान्तासम्मितयोपदेशपुजेः' यह काव्य निर्माण का एक

1. देवानामिदमामनन्ति मुपनः शान्तं कृतं चाधुषं

रुद्रेणदमुमाकृतव्यतिकरे स्वांगों विभक्तं द्विधा।

त्रैगुण्योदभवमत्र लोकचारितं नानारसं दृश्यते

नादयं भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समराधकम्॥

मालविकाग्निमित्रम् : 1/4

प्रधान प्रयोजन बतलाया है। जैसे एक सुन्दरी अपने रमणीय विलासों द्वारा अपने प्रियतम के चित्त को आकृष्ट कर उससे अपना अभिष्ट सिद्ध करा लेती है, उसी तरह कवि भी अपने मनोरम काव्य नाटकादि ग्रन्थों द्वारा वाचकों और प्रेक्षकों के मन पर अपने सद्गुणों को प्रतिबिम्बित कर देता है। इसी कारण महान विद्वान् अश्वघोष ने यह देखकर कि अपने बनाये हुए रुक्ष तत्त्वज्ञान विषयग्रन्थों की ओर सामान्य लोगों को दृष्टि नहीं जाती है, बौद्धदर्शन के प्रसार के लिए 'सौन्दरनन्द' आदि काव्य तथा 'शारिपुत्र प्रकरण' आदि नाटक लिखे।¹

कवि के भावों के भेद के आधार पर इस प्रकार के साहित्य को पुनः दो भागों में बाँटा जा सकता है— एक प्रकार के साहित्य में तो भक्त अपने हृदय के भावों को भगवान के सामने प्रकट करने तथा उसकी महिमा के वर्णन में अपने कोमल तथा भक्तिपूरित हृदय को प्रकट करता है, जिसे हम स्तोत्र साहित्य और भक्ति काव्य कहते हैं। इस काव्यकर्म का उद्देश्य भक्तिभाव का प्रकाशन तथा ईश्वर का अनुग्रह प्राप्त करना भी होता है। दूसरे प्रकार के साहित्य में कवि जिसके काव्यकर्म का उद्देश्य ईश्वर का साथ-साथ लोकानुग्रह प्राप्त करना भी होता है। वह अपनी कृतियों में भावों का सामंजस्य स्थापित करता है। ऐसा कवि जिस दर्शन का अनुयायी होता है, उसको कहीं प्रत्यक्षतः कहीं परोक्षतः अपनी कृतियों में स्थान देकर अपने श्रेष्ठ के प्रति भक्तिभाव प्रदर्शित करते हुए जनमानस को उससे तादात्म्यता को अनुभूति और परम सत्य का साक्षात्कार कराना चाहता है। मानव को मर्यादित बुद्धि अमर्यादित सत्य को पूरी तरह नहीं जान पाती। सत्य जानने का एक ही उपाय है वह है तद्रूप हो जाना, एकरूप हो जाना। बाह्य जगत् को विसंगतियाँ एकात्मानुभवरूप परमसत्य में ही दूर हो सकती है। तन्त्रालोक के अनुसार अनन्त दुःखों और संतापों की ज्वाला में दग्धोभूत सांसारिक जीवों को उनके तात्त्विक आनन्दमय चिदस्व को पहचान कराकर दुःखमुक्त कराना ही सच्चा लोकानुग्रह है। इसी दार्शनिक व्यवस्था का पालन करते हुए कालिदास ने अपनी कृतियाँ लिखीं।

दार्शनिक साहित्य अपने सीमित विषय और पारिभाषिक शब्दावली के प्रयोग

के कारण क्लिष्ट और ज्ञानगम्भीर हो जाता है। जनमानस को उसे ग्रहण करने में कठिनाई होती है। परिणाम स्वरूप इन ग्रन्थों को टोकायें लिखीं जाती हैं। विवृत्ति लिखी जाती है। गूढ़तत्त्वों को लौकिक उदाहरणों के माध्यम से स्पष्ट करने का प्रयत्न किया जाता है। क्योंकि ग्रन्थों का मूलउद्देश्य धर्म-संस्थापना और प्रचार तभी पूरा हो सकता है जब दर्शन सहज बोधगम्य हो।

कालिदास ने प्रत्यभिज्ञादर्शन के इस सिद्धान्त, “जोव अपने वास्तविक स्वरूप के विस्मरणा से द्वैतभाव में रहते हुए दुःख पाता है और जब उसे अपने वास्तविक शिव-स्वरूप का ज्ञान होता है तो उसका द्वैतभाव मिट जाता है और उसे आनन्द की प्राप्ति होती है”, को जन-जन तक पहुँचाने के लिए दार्शनिकता के कलेवर से निकालकर व्यवहारिकता जगत् के धरातल पर प्रतिष्ठित किया। उन्होंने इस दार्शनिक सत्य को कथानक के रूप में ढालकर नाटकों के माध्यम से प्रस्तुत किया। क्योंकि नाटक मनोरंजन के साथ-साथ शिक्षा का भी महत्वपूर्ण साधन है। कालिदास ने अपनी नाट्यकृतियों को मूल कथा को अपने चिन्तन और कल्पनाशक्ति के विस्तार से अभिनवता प्रदान की है।

प्रो. लक्ष्मोदर कल्ला ने अपनी पुस्तक ‘दि बर्थ प्लेस ऑफ कालिदास’¹ में कालिदास का जन्मस्थान काश्मोर प्रदेश निश्चित किया है। कालिदास का जन्म स्थान काश्मोर ही है इस मत को पुष्टि हेतु वह अनेक युक्तियाँ प्रस्तुत करते हैं। इनमें से एक प्रमुख है कि कालिदास की नाट्यकृतियों पर प्रत्यभिज्ञादर्शन की छाप है। प्रत्यभिज्ञादर्शन काश्मोर का प्रमुख दर्शन है। डॉ. वासुदेव विष्णुमिराशी² ने अपनी पुस्तक ‘कालिदास’ में कालिदास के जन्म स्थान की चर्चा करते हुए प्रो. कल्ला की युक्ति को इस प्रकार व्यक्त किया है - कालिदास काश्मोर शैवमत के अनुयायी अर्थात् प्रत्यभिज्ञादर्शन को माननेवाले थे। इस दर्शन में शिव ही सर्वव्यापी एक तत्त्व माना गया है। सृष्टि का निर्माण उसके शिव और शक्ति नामक दो रूपों से होता है। शक्ति की सहायता से शिव इस घराचर जगत् को सृष्टि करते हैं और स्वयं शक्ति का आवरण लेकर प्राण

1. The Birth place of Kalidasa, L.D. Kalla, Delhi University, Publication No.1, 1926

2. कालिदास; डॉ. वासुदेव विष्णुमिराशी, पृ. 59

या आत्मा बन जाते हैं। आगे सद्गुरु के उपदेश से या आध्यात्मिक दर्शन के अभ्यास से अथवा किसी अन्य कारण से जब आत्मा का आवरण नष्ट हो जाता है, तब वह अपने पूर्ण स्वरूप को पहचानता है उसके उपरान्त वह परमानन्द में लीन हो जाता है। इस तत्त्वज्ञान में एक प्रकार से नियति $\{$ अदृष्टशक्ति $\}$ के कारण आत्मा को अपने सत् स्वरूप का विस्मरण हो जाता है। उसके बाद कई कारणों से जब उसका वह पर्दा-आवरण उठ जाता है तब उसे अपने स्वरूप का बोध होता है। यही कल्पना मुख्य है और यह कालिदास के सभी नाटकों में दिखाई पड़ती है। उदाहरणार्थ—

‘मालविकाग्निमित्रम्’ नाटक में सिद्ध के आदेश से मालविका को एक वर्ष तक अज्ञातवास में रहना पड़ता है। आगे चलकर जब उसको दासियाँ विदिशा में आती हैं तब उसे विदर्भराज कन्या कहकर पहचानती हैं। ‘विक्रमोर्वशीय’ नाटक में उर्वशी कुमारवन में जाती है। वहाँ पहुँचते ही वह कार्तिकेय के शाप से लता हो जाती है। आगे चलकर राजा को ‘संगमनीय मणि’ मिलती है और उससे वह फिर अपना पूर्व का स्वरूप धारण करती है। ‘शाकुन्तल’ में दुर्वास के भयंकर शाप के कारण दुष्यन्त शकुन्तला को भूल जाता है। परन्तु अगुंठी को देखते ही उसे अपनी पूर्व स्मृति होती है। इन सब कथानकों से यह मालूम होता है कि ‘प्रत्यभिज्ञादर्शन’ ने कालिदास के सभी नाटकों पर अपना प्रभाव डाला है।

ਭੂਠ ਅਧਯਾਧ

ਸੀਖ

मोक्ष का स्वरूप :

प्रत्येक दर्शन में मोक्ष विचार का उसको परमतत्त्व को मान्यता से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। शैवाद्वैत दर्शन {काश्मीर शैवदर्शन} में पूर्ण एवं अविच्छिन्न स्वातन्त्र्य को माना गया है। परन्तु वेदान्त दर्शन में विशुद्ध चित्ततत्त्व को ही परम तत्त्व माना है, जिसमें स्वातन्त्र्य नहीं है। अतः काश्मीर शैवदर्शन और वेदान्त दर्शन की मोक्ष सम्बन्धी धारणाओं में मतभेद है। काश्मीर शैवदर्शन के मोक्ष विचार पूर्ण स्वातन्त्र्य शिवतत्त्व को परम लक्ष्य मानकर अग्रसर होते हैं और वेदान्त को मुक्ति सम्बन्धी मान्यताओं का लक्ष्य विशुद्ध चित् तत्त्व को स्वरूपावलम्बि है।

काश्मीर शैवदर्शन और वेदान्तदर्शन दोनों ही इस विचार से पूर्णतः सहमत हैं कि जोव का अपने परमार्थ स्वरूप को न जानना ही अज्ञान है। तथा यही बन्ध का भी कारण है। बन्ध के कारण के विषय में काश्मीर शैवदर्शन और वेदान्त के विचारों में समानता है। काश्मीर शैवदर्शन के अनुसार प्रमाता को शिव के स्वातन्त्र्य स्वभाव का ज्ञान न हो पाने का कारण बन्ध है। और बन्ध का कारण अज्ञान है।

वेदान्त दर्शन में बन्ध का कारण अविद्या अथवा अज्ञान माना गया है। अविद्या एवं माया लगभग पर्यायवाची हैं। जोव एवं ब्रह्म में द्वैत बुद्धि रखना, आत्मा में अनात्मा का तथा अनात्म में आत्मा का अभिज्ञान रखना अज्ञान है। यही बन्ध है। इसी के कारण ब्रह्म रूप जोव को अपने परमार्थ स्वरूप का बोध नहीं होता। और वह नित्य एवं विशुद्ध होते हुए भी स्वयं की संसरणशील एवं शुभाशुभ कर्मों में लिप्त मानता है।¹

इस अज्ञान को दो शक्तियाँ हैं- आवरणा एवं विक्षेप। आवरणा शक्ति मेघ से आच्छन्न सूर्य की तरह जोवात्मा के यथार्थ स्वरूप को आच्छन्न कर लेती है, जिससे ब्रह्मरूप जोव स्वयं को संसार की समझने लगता है। विक्षेप शक्ति के कारण जोव, रज्जु में सर्प की भाँति, मिथ्या जगत् को परमार्थ समझने लगता है। काश्मीर शैवदर्शन और वेदान्तदर्शन दोनों अज्ञान को स्वीकार करते हैं। परन्तु दोनों दर्शनों में अज्ञान के

स्वरूप को लेकर मतभेद है। इस मतभेद को बताने से पूर्व अद्वैत वेदान्त को माया और शैवाद्वैत दर्शन को माया का संक्षिप्त परिचय आवश्यक है।

वेदान्त में माया के लिए साधारणतः तीन पर्याय प्रयुक्त होते हैं— अविद्या, अज्ञान एवं माया। काश्मीर शैवदर्शन में माया को दो दृष्टियों से देखा गया है— संकुचित एवं व्यापक। विमर्श के पर्याय के रूप में व्यापक अर्थ को दृष्टि से तथा विमर्श के अन्तर्गत अनेक शक्तियों के एक प्रकार के रूप में इसे संकुचित दृष्टि से प्रयुक्त किया है। काश्मीर शैवदर्शन में व्यापक अर्थ में माया के लिए विमर्श, शक्ति, चिति, चित्शक्ति, चैतन्य, स्वातन्त्र्य आदि अभिधान प्रयुक्त होते हैं तथा संकुचित अर्थ में अविद्या, अज्ञान एवं माया कहा जाता है। अतः संकुचित अर्थ में काश्मीर शैवदर्शन और वेदान्त दर्शन में माया के स्वरूप में विशेष भेद नहीं है। क्योंकि वेदान्त को भौतिक काश्मीर शैवदर्शन ने इस संकुचित स्वरूप को मोह, भेद, भ्रान्ति इत्यादि का कारण माना है। काश्मीर शैवदर्शन और वेदान्त दर्शन में मतभेद का केन्द्र बिन्दु ब्रह्म से माया का सम्बन्ध है। अद्वैत वेदान्त में शुद्ध बुद्ध, मुक्त स्वरूप ब्रह्म को अनिवर्चनीय एवं अनादि माया के द्वैत से सर्वथा परे मानता है। काश्मीर शैवदर्शन के मत में शिवेच्छा से भिन्न कुछ नहीं है। परम शिव को इच्छारूप माया शक्ति से माया तत्त्व अभिन्न होता है। शैवदर्शन में माया को शिव को शक्ति रूपा तथा शिव से अविच्छिन्न स्वभाव वाला माना गया है। अद्वैत वेदान्त और काश्मीर शैव दर्शन में अज्ञान के स्वरूप के मतभेद का आधार यह माया सम्बन्धी मान्यताएँ ही हैं। वेदान्त को आवरणा शक्ति को काश्मीर शैवदर्शन को तिरोधान शक्ति से समोक्त किया जा सकता है। परन्तु वेदान्त में आवरणा और विधेय शक्तियाँ माया की हैं और काश्मीर शैवदर्शन में इन्हें शिव के अविच्छिन्न स्वातन्त्र्य स्वभाव का एक रूप माना गया है। वेदान्त में माया ब्रह्म को अविच्छिन्न शक्ति नहीं मानी गयी है। वेदान्त में जोगात्मा के स्वरूपगोपन को उत्तरदायी शक्ति माया है जो ब्रह्म को अविच्छिन्न शक्ति नहीं है। परन्तु काश्मीर शैवदर्शन में स्वरूप गोपन का कार्य ब्रह्म को अविच्छिन्न स्वातन्त्र्य शक्ति करती है और यह वेदान्त का माया की तरह मिथ्या नहीं अपितु उसी प्रकार सत्य है जैसे ब्रह्म अथवा शिव।

काश्मीर शैवदर्शन और अद्वैत वेदान्त दोनों दर्शन इस सम्बन्ध में एक मत हैं कि जीव नित्य मुक्त हैं। बन्ध एवं मोक्ष परमार्थ दशा कोई औचित्य नहीं है। यह व्यवहार मात्र है। दोनों मतों के अनुसार जोव ब्रह्म से ऐक्यानुभूति हो मोक्ष है। परन्तु तुलनात्मक दृष्टि से इनमें मतभेद है।

वेदान्त बन्ध को इसलिए व्यवहारिक मानता है कि जोव माया कृत उपाधि के कारण स्वयं को बन्धनग्रस्त, कर्ता, भोक्ता, देहो संसरणशील आदि समझता है। जबकि वह परमार्थतः कर्ता, भोक्ता, देहो एवं संसरणशील नहीं है। किन्तु काश्मीर शैवदर्शन के दार्शनिक बन्ध को इसलिए व्यवहारिक मानते हैं कि जोव परम स्वतन्त्र है। अनन्त कृतृत्व एवं ज्ञातृत्व शक्ति से सम्पन्न है किन्तु शिव को स्वातन्त्र्य शक्ति के कारण वह स्वयं को संकुचित कृतृत्व एवं ज्ञातृत्व शक्ति से सम्पन्न तथा मितात्मा समझने लगता है। वेदान्त को इस व्यवहारिकता को व्यवहार इसलिए कहा जाता है कि यह परमार्थ नहीं है। परमार्थ इससे सर्वथा भिन्न है। परन्तु काश्मीर शैवदर्शन में इसे व्यवहार इसलिए कहा जाता है कि परमार्थ इससे सर्वथा भिन्न नहीं अपितु इसका चरम आधिक्य किंवा पूर्णता है।¹

शंकर² के मतानुसार अज्ञान या अविद्या को निवृत्ति मोक्ष है। वेदान्त में अज्ञान को ज्ञान के विपर्योत माना गया है। परन्तु काश्मीर शैवदर्शन में अज्ञान का अर्थ है अपूर्ण ज्ञान तथा इस अज्ञान को भी शिवरूप हो माना है। शंकर मत में अज्ञान को निवृत्ति होतो है परन्तु काश्मीर शैवदर्शन में पूर्णज्ञान को प्राप्ति के लिए अपूर्ण ज्ञान का निषेध नहीं होता अपितु उसको संकुचितता के स्थान पर व्यापकता को स्वीकार किया जाता है। काश्मीर शैवदर्शन में जोवन्मुक्ति में शरीर को बाधा नहीं माना गया है।³ और जोवन्मुक्ति का अर्थ जोव में सांसारिकता और द्वैत प्रपञ्च का अभाव माना है।⁴ काश्मीर शैवदर्शन के मत में जगत् को हेय नहीं अपितु शिव रूप माना है।⁴ और शंकर मत में जगत् के प्रति हेयता का भाव है।

1. बौद्ध वेदान्त एवं काश्मीर शैवदर्शन, पृ. 216

2. बृहदारण्यक उपनिषद् भाष्य, 1.4.7-10, 3.2

3. ब्रह्मसूत्र शंकर भाष्य, 1.1.4

4. शिवदृष्टि 1.3, परमार्थसार विवृति : 58, 75

मोक्ष प्राप्त के संदर्भ में गुरु को महत्ता दोनों मतों में स्वीकार की गई है। वेदान्त मत के अनुसार मुमुक्षु जब तल्लोह-पिण्ड को भौति ज्ञान का जिज्ञासु बनकर गुरु के पास जाता है तब उसे आत्मज्ञान का उपदेश होता है। इस दृष्टि में गुरु का उतना महत्त्व नहीं है जितना मुमुक्षु को योग्यता तथा ब्रह्मोपदेश का। काश्मीर शैव दर्शन में गुरु का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है तथा गुरु को साक्षात् शिव माना है।

महाकवि कालिदास की कृतियों पर वेदान्त की मान्यताओं का प्रभाव माना जाता है। परन्तु यदि हम इस पूर्वाग्रह से मुक्त होकर कालिदास की कृतियों में निहित दर्शन का जड़ को देखें तो वह निश्चित रूप से शैवाद्वैत दर्शन है। कालिदास काश्मीर शैव दर्शन से प्रभावित थे। काश्मीर शैवदर्शन यह उद्घोष करता है कि स्वातन्त्र्य प्रत्यभिज्ञान में अधिकारी का कोई नियम नहीं है। इस मत में ब्रह्म से लेकर कृमि तक सभी मोक्ष के अधिकारी हैं :

अहो महद्विदं कर्म देव त्वद् भावनात्मकम्।

आ ब्रह्मकृमि यस्मिन्नो मुक्तयेऽधि क्रियते कः ॥ १

काश्मीर शैव दर्शन में न केवल शुद्धादि मुमुक्षुओं को अपितु पशु-पक्षी को भी मोक्ष का अधिकारी माना गया है। इस दृष्टि का आग्रह यही है कि यदि परमेश्वर अनुग्रह करे तो वह भी मुक्त हो सकते हैं। यह मत अज्ञान, मल, कंचुक सभी को शिव की इच्छा से समुद्भूत मानता है। तब वृक्षादि भी शिवेच्छा से तत्त्व रूप में विद्यमान हैं तथा उन्हें परमार्थ रूप का अनुभव कराना भी शिव की इच्छा पर निर्भर है। इस प्रकार शैवदर्शन की यह मान्यता निश्चित रूप से द्वैत वेदान्त की दृष्टि से अधिक व्यापक है। कालिदास ने अपनी कृतियों में दृष्टि में इसी शिवात्मक चैतन्य का प्रसार दिखाया। मेघ में भी चेतनतत्त्व दर्शाने से कालिदास पर चिदविलासवादो शैवदर्शन का प्रभाव देखा जा सकता है।

प्रत्यभिज्ञा दर्शन में मोक्ष का स्वरूप :

मोक्ष एक अनुभूति है। प्रत्यभिज्ञा दर्शन में मोक्ष का अर्थ है- अपने वास्तविक

स्वरूप को प्रत्यभिज्ञा अर्थात् अहं विमर्श का उदय मोक्ष है। उत्पलदेव के अनुसार—
अहं विमर्श का स्वरूप है :

अहं प्रत्यवमर्शयः प्रकाशात्मापि वाग्वपुः ।

नासौ विकल्पः सद्दुक्तो दयाक्षोषो विनिश्चयः ॥ ¹

जोवात्मा के लिए मोक्ष कोई नवोन उपलब्धि नहीं है अपितु ज्ञान का हो ज्ञान है मोक्ष अवस्था में मितात्मा अपने पूर्वज्ञात किन्तु बन्धावस्था में विस्मृत परमार्थस्वरूप का प्रत्याभिज्ञान करता है। मितात्मा को जब पूर्णस्वरूप का ज्ञान हो जाता है तो उसे परमेश्वर से तादात्म्य को अनुभूति होती है। प्रत्यभिज्ञा दर्शन के अनुसार मोक्ष केवल परासंवित् को प्राप्ति को अवस्था का नाम है :

मोक्षा हि नाम नैवान्यः स्वरूपप्रथनं हि सः ।

स्वरूपं चात्मनः संवित् नान्यत्र तु याः पुनः ॥ ²

मोक्ष अगोचर है तथा विचार एवं चिन्तन को परिधि से परे है। यह विशुद्ध रूप से विषयोक्त है न तो बाह्य प्रकाश से इसका प्रकाशन हो पाता है और न ही किन्हीं प्रमाणों द्वारा इसका ज्ञान संभव है। अतः मोक्ष को पूर्णता को अनुभूति स्वरूपज्ञानो योगो को हो होता है।

त्रिक के दार्शनिकों ने यथाशक्ति अपने ग्रन्थों में मोक्ष के स्वरूप का वर्णित करने का प्रयास किया है। इस दर्शनानुसार मुक्त पुरुष वह है जिसने सभी प्रकार के अध्वबन्धों को क्षोण कर लिया है और उसे स्वरूपज्ञान हो गया है। स्वरूप के सम्बन्ध में कल्पित समस्त संकोचरूप अज्ञान का अभाव हो जाने पर वास्तविक स्वरूप का प्रत्यभिज्ञान हो जाता है। यह स्वरूप का प्रत्यभिज्ञान परम शिव से मितात्मा के ऐक्य की अनुभूति है। शिव से ऐक्यानुभूति ही मोक्ष है।

• क. बन्ध एवं अज्ञान :

प्रत्यभिज्ञा दर्शन के अनुसार प्रमाता को शिव के स्वातन्त्र्य स्वभाव का ज्ञान

1. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाकारिका : 1.6.1, भास्करो खण्ड 2, पृ. 320

2. तन्त्रालोक, 1.156, पृ. 192

न हो पाने के कारण 'बन्ध' है। 'बन्ध' का अर्थ है संसरणशीलता। वसुगुप्त ने ज्ञान को बन्ध कहा है- ज्ञानं बन्धः ¹। शिवट्टुष्टि में ऐक्यज्ञान के स्थान पर द्वैतज्ञान को अन्ध का स्वरूप कहा है। ² तन्त्रालोक में बन्ध के दो रूप बताए गए हैं, आत्मा में अनात्मा का अभिमान तथा अनात्मा में आत्मा का अभिमान :

आत्मन्यनात्माभिमतौ

सत्यामेव ह्यानात्मनि॥

आत्माभिमानो देहादौ

बन्धो मुक्तिस्तु तन्नयः॥ ³

इहा खलु रिधा बन्ध आत्मन्यनात्माभिमानो नात्मन्यात्माभिज्ञानश्च, -⁴

ईश्वरप्रत्यभिज्ञा विमर्शिनो के अनुसार अनुत्तर स्वातन्त्र्य के स्थान पर संकुचित आभासन को स्वातन्त्र्य समझनेवाला प्रमाता हो बन्ध ग्रस्त है। ⁵ विज्ञानभैरव में पारिमित्य की प्रतीति को बन्धन कहा गया है। ⁶ इस दर्शन में बन्ध का अर्थ है- द्वैत बुद्धि और मोक्ष का अर्थ है ऐक्य की अनुभूति।

विस्तृत अर्थों में बन्ध का तात्पर्य है- संसरणशीलता। वसुगुप्त ने ज्ञान को बंध कहा है :

ज्ञानं बन्धः ⁷

प्रत्यभिज्ञा दर्शनानुसार अज्ञान बन्ध का कारण है। इस दर्शन में ज्ञान का अभिप्राय है, 'अज्ञानात्मक ज्ञान' :

1. शिवसूत्र, 1.2, पृ. 16

2. शिवट्टुष्टि वृत्ति, 1.1

3. तन्त्रालोक, 5.105

4. तन्त्रालोक, आ. 5.105 पृ.

5. ईश्वरप्रत्यभिज्ञा विमर्शिनो, 4.1.3

6. विज्ञानभैरववृत्ति, 135

7. शिवसूत्र : 1.2, पृ. 16

‘यावत् अनात्मनि शरीरादौ आत्मतन्निमानात्मकम् अज्ञानमूलं ज्ञानमपि बन्ध एव ।¹
तन्त्रालोक में भी कहा गया है :

अज्ञानमिति न ज्ञानाभावश्चादिप्रसंगात् ।²

सोमानन्द ने भी अज्ञान को संकुचित ज्ञान माना है ।³ इस अज्ञान का स्वभाव अन्धकार है । इस अज्ञान के द्वारा जोव को प्रकाशविमर्श स्वभाव या शिव के स्वरूप और स्वभाव का ज्ञान नहीं हो पाता । आत्मा के अनात्म एवं अनात्मा के आत्मरूपों अभिमान का कारण भी यही अज्ञान है— अज्ञान रूपो बन्धमोक्षः ।⁴

अज्ञानरूपो बन्ध मोक्षो नैव व्यवस्था⁵

अज्ञानकिल बन्धहेतुरुदितः शास्त्रे मलं तत्स्मृतम् ।⁶

प्रत्यभिज्ञादर्शन में मल, तम, पशुत्वं तिरस्कार, अविद्या, मूर्च्छा, तिमिर, आवृत्ति यह सारे नाम अज्ञान के अभिप्राय में हो प्रयुक्त होते हैं ।

मलो अज्ञानं पशुत्वं च तिरस्कारतस्तमः

अविद्याध्यावृत्तिं मूर्च्छां पर्यायस्तम चोचिता ॥⁷

मालिनो विजय के अनुसार मलत्रय ही अज्ञान है । तथा संसार के अनुकरण का कारण है :

मलमाज्ञानमिच्छन्ति संसाराङ्कुरकारणम् ।⁸

• ख. मूल :

पूर्ण ज्ञान क्रियात्मक परमेश्वर स्वेच्छा से अपने स्वरूप को संकुचित रूप में व्यक्त

1. शिवसूत्र विमर्शिनो, पृ. 13

2. तन्त्रालोक : 1.25, 26, 13.16

3. शिवदृष्टिवृत्ति : 3.48

4. शिवदृष्टिवृत्ति : 3.68-9

5. तन्त्रालोक : 13.41

6. तन्त्रसार : पृ. 5

7. तन्त्रालोक विवेक : 13.44 में उद्धृत उक्ति

8. शिवसूत्र विमर्शिनो में पृ. 115 पर उद्धृत उक्ति 1, तन्त्रा, भाग 1. पृ. 58

करता है तो उस संकोच का कारण मल होता है।¹ अज्ञान या मल भी शिव का ही रूप है अन्य कुछ नहीं।

तेन स्वरूप स्वातन्त्र्यमात्रम् मल विजृम्भितम्।²

परिमित प्रमाता के तात्त्विक स्वरूप के विधायक यह मल तीन प्रकार के कहे गए हैं। आणव, मायोय, कर्म। परमेश्वर के स्वातन्त्र्य से समुद्भूत यह तीनों मल वस्तुतः एक दूसरे से कार्यकारण भाव से सम्बद्ध हैं।

मायोयस्य कर्ममल तस्य चाणवं कारणमिति भावः।³

1. आणवमल :

आणवमल मूल मल है जो कि परमचैतन्य को संकुचित करके अणु बना देता है। अणु का अर्थ है धुंदा अत्यन्त परिच्छन्न बिन्दु। यह मल वह संकुचित दशा है, जिसके कारण परमचैतन्य का वास्तविक स्वरूप ढक जाता है। परमात्मा के वास्तविक स्वरूप को आच्छन्न करना ही इसका स्वभाव है। यह प्रमाता को तात्त्विक स्वरूप के बोध से शून्य बताता है।

‘इह खलु परमेश्वरः पूर्णज्ञान क्रियात्मकं स्व स्वरूपस्वेच्छया पृच्छाय संकुचितात्मवभासयेत्।’⁴

यह आणवमल स्वातन्त्र्य स्वरूप के संकोच के लिए उत्तरदायी है :

संकोच एव हि पुंसामाणवमलमित्युक्तप्रायम्।⁵

2. मायोय मल :

मायोय मल वह परिसीमित स्थिति है जो माया के द्वारा आविर्भूत होती है। आणवमल के द्वारा प्रमातृ के स्वरूप का संकोच हो जाता है तब मायोय मल से आवृत्त होकर उसका अहन्ता का अभिमान दृढ़ हो जाता है। इस अभिमान के फलस्वरूप वह

1. दृष्टव्य, शिवदृष्टि : 7.87, तन्त्रालोक, 9.65-6

2. तन्त्रालोक, भाग 6, पृ. 73

3. शिवसूत्र विमर्शिनी, पृ. 12, टि. 52

4. तन्त्रालोक, 6, पृ. 60

5. स्वच्छन्दतन्त्र, टीका, 10, पृ. 519

अपने से अभिन्न एवं चिन्मय प्रमेय पदार्थों को अपने से सर्वथा भिन्न और अचिन्मय अनुभव करने लगता है। पुरुष या जोव को यह भेद बुद्धि हो मायोयमल कहलाती है। तन्त्रालोककार के अनुसार :

‘शरीरभुवनाकारो मायोयः परिकीर्तितः।’¹

3. कार्ममल :

संकुचित प्रमाता कतिपय प्रमेयों में शुभता का और कतिपय प्रमेयों में अशुभता का आरोप करने लगता है।¹ शुभ या अशुभ के विकल्प से परिच्छन्न होकर उसके द्वारा जो कर्म किए जाते हैं उन कर्मों का कारण कार्ममल को कहा जाता है।² निष्पन्न कर्म को जो वासनार्यें अथवा संस्कार चित्त में रह जाते हैं उन्हें कार्ममल कहते हैं। यही वासनार्यें जोव को एक जन्म से दूसरे जन्म को और प्रवृत्त करती हैं।³

तीनों मलों में कार्ममल ही प्रधान है। तीनों मल, आणव, मायोय और कार्म भेदात्मक है अतः यही बन्ध रूप या बन्ध के कारण कहे जाते हैं।

षट्कंचुक :

प्रत्यभिज्ञा दर्शन के साहित्य में स्वातन्त्र्य स्वभाव को संकुचित करनेवाले षट्कंचुक भी माने गए हैं। यह कंचुक है- माया, कला, राग, विद्या, काल और नियति। इन कंचुकों से आवृत मितात्मा पशु कहलाता है।

सरस्वती के वरदपुत्र कालिदास के कृतित्व का उद्देश्य दार्शनिक सिद्धान्तों में सरसता का संचार कर लोभे सादे शब्दों में ढालकर जनमानस को परिचित कराना था। अतः उन्होंने दार्शनिक सिद्धान्तों को सरल रूप में प्रस्तुत किया है।

1. तन्त्रालोक, 1.56

2. स्वच्छन्दतन्त्र टोका, 5.88, 1 तथा

‘क्रियाशक्तिः क्रमेण भेदं सर्वकर्तृत्वस्य किञ्चित्कर्तृत्वाप्तेः कर्मेन्द्रियरूपसंकोच

ग्रहणपूर्वम् अत्यन्तं परिमिततां प्राप्ता शुभाशुभनुष्ठान मयं कार्ममलम् ॥

-प्रत्यभिज्ञाहृदयम् सूत्र को वृत्ति। पृ. 60

3. प्रत्यभिज्ञाहृदयम्, जयदेव अनु. , पृ. 111

कालिदास ने मोक्ष के लिए मुक्ति,¹ अपवर्ग,² अनपायिपद,³ अनावृत्तिमपद,⁴ अजन्म,⁵ परार्थगति⁶ तथा मोक्ष⁷ इत्यादि शब्दों का प्रयोग किया है। उन्होंने मलों के लिए स्मृति भिन्न मोह, तमस, माया शब्दों का प्रयोग किया है।

कालिदास जोवन को क्षणभंगुरता और मृत्यु को अनिवार्यता को स्वीकार करते हैं :

मरणं प्रकृतिः शरीरिणां विकृतिर्जोवितमुच्यते ब्रूयैः ।

क्षणमप्यवतिष्ठते श्वसन् जन्तुर्ननु लाभवानसौ ॥⁶

माया तत्त्व से लेकर पृथ्वी तत्त्व तक को सम्पूर्ण भौतिक सृष्टि शैवदर्शन में प्रतिपादित मायोय सृष्टि है। जोव अथवा प्रमाता के बोध के आधार पर दो प्रकार को सृष्टि मानो गई है— शुद्ध अध्वा, अशुद्ध अध्वा। अशुद्ध अध्वा ही मायोय सृष्टि है। वह जोव का प्रतीक है। कालिदास को कृतियों के पात्र यक्ष, दुष्यन्त, शकुन्तला, पुरुरवा, उर्वशी, विक्रम, मालविका इत्यादि इस सभी मायोय जगत् के जोव हैं। सामान्य जोव इस मायोय सृष्टि का मात्र द्रष्टा न होकर भोक्ता भी है।

1. रघुवंशम्, 10/23, कुमारसम्भवम् : 3/5,

2. रघुवंशम्, 8/16

3. अजिताधिगमाय मन्त्रिभिर्घुष्ये नोतिविशरदैरजः ।

अनपायिपदोपलब्धये रघुराप्ते समियाय योगिभिः ॥

रघुवंशम्, 8/17

4. कुमारसम्भवम् : 6/77,

5. रघुवंशम्, 18/33

6. स परार्थगतेरशोच्यतां यितुरुदिदृश्य सदर्थ वेदिभिः ।

शामिताधिरधिज्यकार्मुकः कृतवान् प्रतिशासनं जगत् ।

रघुवंशम् : 8/27

7. कुमारसम्भवम् : 10/29

8. रघुवंशम्, 8/87

प्रत्यभिज्ञादर्शन की मान्यता के अनुसार मायोय जगत् के समस्त पात्र मूलतः शिव हैं। शिव क्रीडा के लिए अपने इच्छाशक्ति से स्वयं पुरुष एवं प्रकृति बन गया है। जीवतत्त्व अथवा पुरुषतत्त्व को स्थिति को प्राप्त जीव में आत्मप्रत्यभिज्ञान का अभाव रहता है। इस अभाव में शिवत्त्व को ओर न जाकर जगत् को ओर उन्मुख हो जाता है। उसमें भोग, मोह, आकर्षण वासना का प्राबल्य हो जाता है। शरीरधारो जीव विभिन्न दुःखों को पाता है। प्रत्यभिज्ञादर्शन के अनुसार मनुष्यों के दुःखों का कारण यही है कि शरीरधारो जीव आत्मविस्तार करके अपने से अभिन्न शिवस्वरूप के स्वातन्त्र्य की नहीं पहचान पाता तथा माया जन्य भेदबुद्धि के अनुसार कार्य करते हुए विभिन्न दुःखों एवं कष्टों को भोगता है। यह द्वैतबोध हो मानव के दुःखों का कारण है। प्रत्यभिज्ञान के प्रकाश के अभाव में वह दुःखों में भटकता रहता है। जीव भाव को ग्रहण करनेवाले शिव का अपने स्वातन्त्र्य स्वभाव को न पहचानना उसका अज्ञान है, इसी अज्ञान को शैवद्वैतदर्शन में मल कहा गया है।

कालिदास को कृतियों में इन्हीं मलों को ओर संकेत किया गया है। यह द्वैत बुद्धि या मलबुद्धि हो तो है जो यक्ष को उसके कर्तव्य से भटकाती है, उर्वशी को प्रमादी बनाती है, दुष्यन्त में विस्मृति उत्पन्न होती है।

मलों का स्वरूप बहुत विस्तृत है। मनों का विस्तार हो व्यक्ति को विवेक एवं विचार से शून्य बनाता है। मलाच्छादित बुद्धिवाला प्राणी सत् को सम्मुख होने पर भी नहीं पहचान पाता। दुष्यन्त सामने उपस्थित शकुन्तला को भी नहीं पहचानता और तर्कों द्वारा उसे स्वीकार करने से इन्कार कर देता है। शकुन्तला द्वारा आश्रम में बिछाये गए दिनों को कुछ बातें याद दिलाए जाने पर भी राजा दुष्यन्त कहता है :

राजा— एवमादिभिरात्मकार्य निर्वर्तिनो नामनुतमपवाङ्मधुभिराकूड्यन्ते विषयिणाः।¹

गौतमो जब कहतो है कि तपोवन को बालायें छल बल नहीं जानती तो राजा पुनः कहता है :

राजा— तापस वृद्धे।

स्त्रोणामशिक्षित पटुत्वममानुषोऽसु संदृश्यते किमुत या :

प्रतिबोधवत्यः ।

प्रागन्तरिक्षगमनात्स्वमपत्यजातमन्यैर्दिजैः परभृताः खलु

पौषयन्ति ॥ ¹

जब दुष्यन्त को द्वैतबुद्धि नष्ट होती है तो वह कहता है कि वह शकुन्तला क्या थी, स्वप्न थी, माया थी अथवा मति का भ्रम थी :

स्वपनोऽनु माया नु मतिभ्रमो नु

किलष्टं तु तावत्फलमेव पुण्यम् ।

असंनिवृत्तयै तदतीतमेते

मनोरथा नाम तत्प्रपाता ॥ ²

पुनः पश्चात्ताप करते हुए कहता है :

प्रथमं सारंगाक्षया प्रियया प्रतिबोध्यमानमपि सुप्तम् ।

अनुशयदुःखायेदं हतहृदयं संप्रति विबुद्धम् ॥ ³

षट् कंचुकों से आवृत होकर शिव हो जीव बनता है । जीव में अहममन्यता, घंचलता, मिथ्याभिमान और द्वैतभाव का प्राबल्य होता है, जिनके कारण जीव आत्मप्रत्यभिज्ञान करने में असमर्थ रहता है । दुष्यन्त भी इसी द्वैतबुद्धि के कारण दुःख पाता है । माया के वशोभूत हो वह अलभ्य के पीछे भागता हुआ लभ्य को ठुकरानेवाला बनता है :

साक्षात् प्रयासुपातामपहाय पूर्वं चित्रार्पितां

पुनरिमां बहुमन्यमानः ।

स्रोतोवह्निं पथि निकामजलामतोत्य जातः

सखे प्रणयवान्मृगतृष्णिकायाम् ॥ ⁴

दुष्यन्त को स्थिति इस प्रकार की है जैसे कोई भरौ हुई नदी का त्यागकर

1. अभिज्ञानशाकुन्तलम् : 5/22

2. अभिज्ञानशाकुन्तलम् : 6/10

3. अभिज्ञानशाकुन्तलम् : 6/7

4. अभिज्ञानशाकुन्तलम् : 6/16

मृगतृष्णा को ओर दौड़े। यह द्वैत बुद्धि हो बन्ध का कारण अथवा मल है।

जीव को तात्त्विक शिव स्वरूप को पहचानने के लिए मलों का परिहार आवश्यक है। कालिदास भी मोक्ष प्राप्ति हेतु ईश से पाप बुद्धि को मिटाने की प्रार्थना करते हैं :

एकैश्वर्ये स्थितोऽपि प्रणतबहुफले यः स्वयं कृत्तिवासा
कान्तासंमिश्रदेहोऽप्यविषयमनसां यः परस्ताधतीनाम्।
अष्टाभिर्यस्य कृत्सनं जगदपि तनुभिर्विभ्रतो नाभिमानः
सन्मार्गलोकनाय व्यपनयतु स वस्तामसोवृत्तिमोशः ॥ १

संसार के स्वामी महादेवजी पापों को ओर ले जानेवाली हमारी बुद्धि मिटाकर हमें सन्मार्ग पर प्रवृत्त करें। पापबुद्धि का विनाश हो मल बुद्धि का विनाश है। मलाच्छादित मन की अवस्था वैसी ही होती है जैसे धूल से आच्छादित दर्पण की। ✓
जब तक दर्पण पर धूल छाई रहती है प्रतिबिम्ब साफ नहीं दिखता। धूल के हटते ही प्रतिबिम्ब दृष्टिगोचर होने लगता है। अतः अपने शिवस्वरूप को पहचानने के लिए पहले मलाच्छादित बुद्धि का विनाश आवश्यक है।

मानव बुद्धि विषयों की ओर सहज हो आकृष्ट होती है। विषय वासनायें, अभिमान मल का रूप है। भक्त को अपनी बुद्धि निर्मल करने के लिए अपने अन्दर की विषय वासनाओं और कामेच्छाओं को मारना होगा। अन्तःकरण की निर्मलता के बाद बुद्धि में सत्त्वभाव उत्पन्न होता है। सत्त्वावस्था में ही चित्त ईशभक्ति में एकाग्र हो पाता है। मन से मलों को निवृत्ति हेतु भक्त शिव से प्रार्थना करता है। परमशक्तिशाली शिव ही हमारी पाप बुद्धि मिटाकर अच्छे कामों में लगता है। उसकी कृपा से मन में शुद्धता निर्मलता आती है।

मलावृत्त संसारो स्वकृत कर्मों का फल भोगते हुए दुःख पाता है अतः कर्मबन्ध से छुटकारा आवश्यक है। मनुष्य को अपने कर्मों का फल तो भोगना ही पड़ता है :

तस्य संवृतमन्त्रस्य गूढाकरो दि. गतस्य च।

कलानुमेयाः प्रारम्भाः संस्काराः प्राक्तना इव ॥ ¹

कालिदास का कर्मवाद में विश्वास था। वह जानते थे कर्म का सिद्धान्त है-कि हर कर्म का अपना भविष्यफल होता है। प्रत्येक प्राणी अपने कर्मों का फल अवश्य भोगता है :

रुदता कुत एव सा पुनर्भवता नानुमृतापि लभ्यते।

परलोकजुषां स्वकर्मभिर्गतयो भिन्नपथा हि देहिनाम् ॥ ²

इस जन्मरण के बन्धन से छुटकारा पाने के लिये मोक्ष आवश्यक है। मोक्ष वह ज्ञानरूपी अग्नि है जिससे समस्त कर्मफल दग्ध हो जाते हैं। मनुष्य कर्मबन्धन से मुक्त हो जाता है :

अग्न्यापिदग्धं बीजं यथा प्ररोहासमर्थतामेति।

ज्ञानग्निदग्धमेवं कर्म न जन्मप्रदं भवति ॥ ³

जिस प्रकार अग्नि में भुना बीज अंकुरित नहीं हो सकता उसी प्रकार ज्ञानरूपी अग्नि में जला कर्म जन्मप्रद नहीं होता।

कालिदास ने रघुवंशम् में रघु को मोक्ष प्राप्ति के सन्दर्भ में इस तथ्य को दर्शाया है। रघु ने ज्ञानग्नि से अपने सारे कर्मों को राख कर दिया था। वह कर्मबन्ध से मुक्त हो गए थे :

अकरोदधिरेश्वरः क्षितौ द्विषदारम्भफलानि भस्मसात्।

इतरौ दहने स्वकर्मणां विवृते ज्ञानमयेन वहिन्ना ॥ ⁴

. ग. सूक्ति :

प्रत्यभिज्ञादर्शन को मान्यानुसार यह जगत् शिवात्म है। शिव अपनी स्वातन्त्र्य शक्ति से जगत् का आभासन करता है। जब मितात्मा को शिव से ऐक्यानुभूति हो जाती है तो वह उस का जगत् के प्रति वही दृष्टिकोण हो जाता है जो शिव का है।

1. रघुवंशम् : 1/20

2. रघुवंशम् : 8/85

3. परमार्थसार, का. 62

4. रघुवंशम् : 8/20

वह जगत् को मिथ्या त्याज्य अथवा हेय न मानकर इसे शिव रूप तथा अपने से अभिन्न मानता है।

प्रत्यभिज्ञादर्शन में दो प्रकार की मुक्ति मानी गई है :

1. जोवन्मुक्ति
2. विदेह मुक्ति

आत्मप्रत्यभिज्ञा अथवा तात्त्विक आत्मबोध के परिणामस्वरूप जब जोवात्मा परमेश्वर के वैभव को अपना वैभव मान कर शिवमयभाव से परिपूर्ण हो जाता है तब वह जोवन्मुक्ति प्राप्त कर लेता है। परमेश्वर के ऐश्वर्य का आस्वाद हो जोवन्मुक्ति है। इसमें मृत्यु अपेक्षित नहीं है। मृत्यु के उपरान्त परमेश्वर में लीन होना विदेह मुक्ति है।

जिसने परम अद्वय को प्राप्ति से द्वयरूप भ्रम को तिरस्कृत कर दिया है वह शरीर के साथ सम्बन्ध रहने पर भी मुक्त होता है। क्योंकि शरीर के साथ सम्बन्ध बन्धन नहीं है न हो उसके साथ वियोग मुक्ति है, जो मुमुक्षु परमशिव के साथ तादात्म्य का अनुभव कर लेता है वह जोवन धारणा किये हुए भी मुक्त है। परमार्थसार में कहा गया है :

मोक्षस्य नैव किंचिद् धामस्ति न चापि गमनन्यत्र ।

अज्ञानग्रन्थिभिदा स्वशक्त्यभिव्यक्तता मोक्षः ॥ ¹

मोक्ष का न तो कोई धाम है और न हो कहीं जाना होता है, अज्ञान की ग्रन्थि खोल देने से स्वशक्ति का अभिव्यक्त हो जाना मोक्ष है। अज्ञान को गाँठ खुल जाने पर जिसको संशय समाप्त हो गया हो, भ्रान्ति तिरस्कृत हो गई है, पाप पुण्य नष्ट हो गये हैं, वह शरीर के साथ सम्बन्ध होने पर भी मुक्त है :

भिन्नज्ञानग्रन्थिर्गतसंदेहः पराकृतभ्रान्तिः ।

प्रक्षोणमुण्यपापो विग्रहयोगेऽप्यसौ मुक्तः ॥ ²

1. परमार्थसार, का. 60

2. वही, का. 61

स्वच्छन्दतन्त्र में भी देहपात के बिना जो वित रहते हुए भी मुक्ति का समर्थन किया गया है :

यदा तु शुद्धविद्याशक्त्या संकोचविकासोऽस्य विलाप्यते तदा
मुच्यतेऽसौ वै, नच देहपाते अस्य मुक्तिरपितु जो वितोऽपि ।¹

तथा ईश्वरप्रत्यभिज्ञा में कहा गया है ।

एष प्रमाता मायान्धः संसारो कर्मबन्धनः ।

विद्य-भिज्ञा पितैश्वर्याश्च यदधनो मुक्त उच्यते ॥²

प्रत्यभिज्ञादर्शन के अधिकतर सभी ग्रन्थों में जो वन्मुक्ति का हृदता से समर्थन किया गया है तथा जो वन्मुक्ति को भोगमोक्ष रूप माना है :

भोगमोक्ष साक्षात्कार लक्षणो जो वन्मोक्षः³

प्रत्यभिज्ञादर्शन को यह विलक्षणता है कि यह भोग और मोक्ष में सामरस्य मानता है । अभिनवगुप्त के अनुसार जिस मुमुक्षु का हृदय जिन भोगों में तल्लीन है, तन्निष्ठ है वह उन्हीं के द्वारा सिद्धि प्राप्त कर लेता है ।

यो यत्राभिलषेदभोगान्स तत्रैव नियोजितः ।

सिद्धि भाक् ॥⁴

इतिन्यायेन यस्य यत्र निष्ठता तत्प्राप्तिर्भवति इत्याह :

यो यदात्मकता निष्ठस्तदभावं स प्रपद्यते ।

व्योमादिशब्दविज्ञानात् परो मोक्षो न संशयः ॥⁵

जो वन्मुक्ति और विदेह मुक्ति इन स्वरूपों में कोई तात्त्विक भेद नहीं है । दोनों स्थितियों में मुक्त संसार से परे ही होता है :

ज्ञानो जो वन्नेव तुरोयरूपो देहाभावात् तुर्यातीतरूपः, इति उभयथा पुनः न

1. स्वच्छन्दतन्त्रटीका, भाग 6, पृ. 52

2. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाकारिका : 3.2.2

3. महार्थमंजरी परिमल, 52

4. तन्त्रालोकविवेक, 1.64 पर उद्धृत पृ. 101

5. तन्त्रालोक : 1.64

काचित् संसार शंका..... ।¹

मोक्षोपाय :

प्रत्याभिज्ञादर्शन के साहित्य में विस्तार से मोक्षोपाय का वर्णन किया गया है। अभिनवगुप्त ने तन्त्रालोक¹ तथा तंत्रासार में 4 प्रकार के मोक्षोपाय बताये हैं : अनुपाय शाम्भवोपाय, शाक्तोपाय आणवोपाय- इन्हीं को क्रमशः आनन्दोपाय, इच्छा-उपाय, ज्ञानोपाय तथा क्रियोपाय भी कहते हैं। क्षेमराज ने अपने शिवसूत्रविमर्शिनो में शांभव शाक्त तथा आणव ये तीन ही मोक्षोपाय बताये हैं। क्षेमराज के द्वारा अनुपाय को इन्हीं तीनों में समाहित कर लिया गया है, वह अनुपाय का अलग से उल्लेख नहीं करते। चार प्रमुख मोक्षोपाय इस प्रकार हैं :

1. अनुपाय :

प्रत्याभिज्ञादर्शन में अनुपाय को विशेष महत्त्व दिया गया है। इसमें उपायों का अत्यल्प महत्त्व होने के कारण इसे अनुपाय कहा जाता है अनुपाय का अर्थ उपाय का निषेध नहीं है- अनुपायइति नोपायनिषेधमात्रम् ।²

अनुपाय को आनन्दोपाय भी कहते हैं। जब जोव अपने अंतः में शिव को खोज लेता है तो उसे इस बात का ज्ञान हो जाता है कि उसको आत्मा शिव तथा विश्व अत्यतिरिक्त है और वह मुक्त हो जाता है परन्तु उसे शिवत्व को अनुभूति कराने में गुरु अथवा किसी आप्तपुरुष के वचनों की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है।

2. शाम्भवोपाय अथवा इच्छोपाय :

शांभवोपाय को इच्छोपाय भी कहते हैं इसमें चरमसत्ता का ज्ञान इच्छाशक्ति के आभास द्वारा प्राप्त होता है। विश्व के शिवेच्छा रूप होने के कारण शाम्भवोपाय का स्वरूप भी परामर्श ही है :

‘परामर्शमात्रं शिवस्य संविन्मात्ररूपत्त्वमित्येवं परामर्श एव चास्य शांभवोपायस्य स्वरूपम् ।’³

1. तन्त्रालोक : 1.258

2. तन्त्रालोकविवेक : 2.1.3

3. तन्त्रालोकविवेक : 3.280

केवल मुक्ति को प्रबल इच्छा का अभ्यास हो इसमें आवश्यक है। मन्त्र, मुद्रा, क्रियादि को कोई अपेक्षा नहीं।¹

3. ज्ञानोपाय अथवा शाक्तोपाय :

इसमें मानसिक क्रियाओं को प्रधानता होने से शाक्तोपाय को ज्ञानोपाय भी कहते हैं। जप, ध्यान, समाधि आदि उपाय इसी में समाहित हैं।

4. क्रियोपाय अथवा आणवोपाय :

आणवोपाय में आत्मसाक्षात्कार हेतु मन्त्रों का उच्चारण एवं विभिन्न शारीरिक क्रियाओं को किया जाता है। अतः इस उपाय को क्रियोपाय भी कहते हैं।

अन्यमोक्षोपाय :

प्रत्यभिज्ञादर्शन में मोक्षप्राप्ति के इन उपायों के अतिरिक्त और भी मोक्षोपाय बताए गए हैं। इनमें से तीन प्रमुख हैं। शास्त्र, गुरु एवं मुमुक्षु।

1. शास्त्र :

ज्ञेय तत्त्वों के प्रदर्शन एवं उनको सम्यक् व्याख्या करने में समर्थ होने के कारण शास्त्रों को मोक्षोपायों में परिगणित किया जाता है। शास्त्र ज्ञेय तत्त्वों के स्वरूप का ज्ञान कराने का प्रधान माध्यम है :

शास्त्रमेव प्रधानं यज्ज्ञेयतत्त्वं प्रदर्शकम्।²

शास्त्र प्रदत्त ज्ञान से मितात्मा को अपने स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करने में सहायता मिलती है।

2. गुरु :

मोक्षोपाय के रूप में गुरु को महिमा अवर्णनीय है। शिवसूत्र में गुरुपाय के अन्तर्गत गुरु को महिमा बताई गई है।³ शिव एवं गुरु में परस्पर भिन्नता का निषेध करते हुए सद्गुरु को साक्षात् शिव माना गया है :

1. मन्त्रमुद्राक्रियोपायस्तदन्या नात्र काश्चन। तन्त्रालोक, 3.270

2. तन्त्रालोक : 1.47, पृ. 86

3. गुरुरुपायः 11 6 11, शिवसूत्र, 2.6

यो गुरुः स शिवः प्रोक्तो यः शिवः स गुरुः स्मृतः ।
उभयोरन्तरं नास्ति गुरोरपि शिवस्य च ॥ ¹

3. मुमुक्षु :

स्व के यथार्थ स्वरूप का साक्षात्कार अथवा ज्ञान मोक्ष है²— तन्त्रालोक तथा परमार्थसार आदि ग्रन्थों में मुमुक्षु को भी मोक्ष का उपाय माना है। मोक्ष में स्व को स्व के यथार्थ रूप का साक्षात्कार होता है। गुरु तो मुमुक्षु को प्रत्यभिज्ञान कराने का साधन मात्र है। स्व को भी एक दृष्टि से मोक्षोपाय के रूप में गणना होती है।

आत्मज्ञानमेव शिवतत्त्व साक्षात्कारे निमित्तम् । ³

4. शक्तिपात :

प्रत्यभिज्ञादर्शन में आत्मज्ञान के दो उपाय शक्तिपात और दीक्षा भी बताए गए हैं। परमेश्वर का शक्तिपात या अनुग्रह ही मुक्ति का एकमात्र परम एवं अकृत्रिम उपाय है— नहि शक्तिपातमन्तरेण तद्विवेक ज्ञानमेवोदियादिति । ⁴

महाकवि कालिदास ने भी अपनी कृतियों में मोक्षोपायों का वर्णन किया है। कुमारसम्भवम् महाकाव्य के इस श्लोक में उन्होंने मोक्षोपायों के अस्तित्व को ओर संकेत किया है :

तदिच्छामो विभो ऋष्टं तेनान्यं तस्य शान्तये ।

कर्मबन्धच्छिदं धर्म भवस्येव मुमुक्षवः ॥ ⁵

मोक्ष पाने को इच्छावाले लोग जन्म मरण से मुक्ति हेतु कर्मबन्धनों को काटने वाला उपाय खोजते हैं।

अर्थात् मोक्षोपायों को सत्ता है और वह संख्या में कई हो सकते हैं।

मोक्ष के विविध उपायों को अनेकता का अर्थ यह नहीं है कि मोक्ष के स्वरूप एवं

1. तन्त्रालोकविवेक : 1. 106 में उद्धृत उक्ति

2. तन्त्रालोक : 1. 22, 23, परमार्थसार विवृति, 55

3. तन्त्रालोक विवेक : 5. 275-6

4. तन्त्रालोक विवेक : 13. 5. 6

5. कुमारसम्भवम् : 2/5

स्तर में कोई भेद है। मुक्ति के स्वरूप में कोई भेद नहीं है। मुक्ति का स्वरूप एक ही है। कालिदास का भी यही मत है कि परमेश्वर के पास पहुँचने के मार्ग अलग-अलग तथा ध्येय एक ही है :

बहुधाष्यागमैर्भिन्नाः पन्थानः सिद्धहेतवः।

तत्पुण्येव नियतन्तत्योधा जाह्नवोया इवाण्वि॥¹

कालिदास ने अपनी कृतियों में शाम्भवोपाय पर बल दिया है। वह योग, समाधि, ध्यान को महत्त्वपूर्ण मानते हैं। संसार से मुक्ति हेतु कर्मकाण्डों जैसे यज्ञों आदि को महत्त्व नहीं देते हैं। योगाभ्यास द्वारा चित्त को एकाग्रता को वह विशेष महत्त्व देते हैं।

रघुवंशम् महाकाव्यम् में रघु की मोक्षप्राप्ति की प्रक्रिया में अधिकतर सभी मोक्षोपायों का समावेश किया है। इस दर्शन में ज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र में सामरस्य की स्थिति है।

ज्ञेयतत्त्वों के स्वरूप का ज्ञान कराने का प्रमुख माध्यम शास्त्र है। रघु भी मोक्षपद प्राप्त करने हेतु तत्त्वदर्शी योगियों के साथ चर्चा करते हैं।

अजिताधिगमाय मन्त्रिभिर्युजे नोति विशारदैरजः।

अनपायिपदोपलब्धये रघुरापतैः समिधाययोगिभिः॥²

रघु ने शाम्भवोपाय अथवा इच्छोपाय का भी आश्रय लिया। वह मोक्षपद प्राप्त करने के लिए अपने मन को चंचल वृत्तियों को नियन्त्रित करने के लिए मन को साधने का अभ्यास करने लगे :

नृपतिः प्रकृतोरवेधितुं व्यवहारासनमाददे युवा।

परिधेतुमुपांशु धारणा कुशपूतं प्रवायस्तु विष्टरम्॥³

शाम्भवोपाय में चित्त को निश्चल बनाने का अभ्यास किया जाता है। शाम्भव

1. रघुवंशम् : 10/26

2. रघुवंशम् : 8/17

3. रघुवंशम् : 8/18

योग को साधना से कर्म बन्ध धोण होते है। शास्त्रावेपाय हो सर्वोत्तम उपाय है। यह उपाय परिपक्व अवस्था में पहुँच जाने पर अनुपाय कहलाता है। महाकवि कालिदास ने कुमारसम्भवम् में इसी शास्त्रव्योपयोग साधना को ओर संकेत किया है।¹ रघु ने योगबल से अपने शरीर में अंतस्थित शत्रुओं को वश में कर लिया।² उन्होंने शास्त्रावेपाय के साथ-साथ ज्ञानोपाय का भी प्रयोग किया। ध्यान, समाधि जप आदि उपाय ज्ञानोपाय में आते हैं। रघु ने अपने ज्ञानाग्नि से समस्त कर्मों को दग्ध कर दिया।

अकरोदधिरेश्वरः क्षितौ द्विषदारम्भफलानि भस्मसात्।

इतरो दहने स्वकर्मणां वृते ज्ञानमयेन वहिन्ना ॥³

स्थिर चित्तवाले रघु ने तब तक योगक्रियाओं को नहीं छोड़ा जब तक उन्हें परमात्मा का दर्शन नहीं हो गया :

न नवः प्रभुराफलोदयात्स्थिरकर्मा विराम कर्मणः।

न च योगविधेर्नवतरः स्थिरधीरा परमात्मादर्शनात् ॥⁴

रघु ने योगक्रियाओं के बल से परमात्मा का ध्यान कर उनका ऐश्वर्य जान लिया, परमतत्त्व से एक्यानुभूति करते हुए रघु ने एक प्रकार से जोवन्मुक्ति या मोक्ष पा लिया था। उसके पश्चात् 'अज' के कहने पर संसार में कुछ और वर्ष व्यतीत किए।⁵ शैवदर्शन

1. काश्मीर शैवसाधना में शैवो-साधना का स्वरूप, लेख, मिथलेश कुमार, पृ.सं. 44

2. अनयत्प्रभुशक्तिसंपदा वशमेको नृपतीननन्तरान्।

अपरः प्रणिधानयोग्यया भरुतः पंचशरीरगोचरान् ॥

रघुवंशम् : 8/19

3. रघुवंशम् : 8/20

4. रघुवंशम् : 8/22

5. अथ काश्चिदजव्यपेक्षया गमयित्वा समदर्शनः समाः।

तमसः परम्पदव्ययं पुरुषं योगसमाधिना रघुः ॥

रघुवंशम् : 8/24

में हो मृत्युबोध के बिना मोक्षप्राप्ति का सूत्र पाया जाता है। प्रत्यभिज्ञादर्शन में शरीर के रहते हुए जोवन्मुक्ति संभव है। प्रत्यभिज्ञान के द्वारा जोवन्मुक्ति हो इस दर्शन का प्रयोजन है।¹ जब मितात्मा को परमेश्वर्य की अनुभूति हो जाती है उसी क्षण वह जोवन्मुक्ति प्राप्त कर लेता है। वह समस्त प्रमेयों के परमार्थ स्वरूप को जान कर उन्हें स्वात्मरूप समझने लगता है। अपने आपको हो परमेश्वरसमझते हुए, जो जोवन धारण करता है वही जोवन्मुक्त है। ऐसा पुरुष पुनः संसारो नहीं बनता, वह कर्म अवश्य करता है परन्तु उसके द्वारा किए गए कर्म उसी प्रकार फल उत्पन्न करने में असमर्थ होते हैं जैसे- दग्धबोज।² जिस मुमुक्षु ने तादात्म्य का अनुभव कर लिया वह जोवन धारण किए हुए भी मुक्त है।³ रघु ने भी इसी प्रकार की मुक्ति को प्राप्त किया था फिर कुछ समय पश्चात् वह परमतत्त्व में लीन हो गए थे। उन्हीं एकाकार हो गए। क्योंकि परमतत्त्व का ध्यान करनेवाले योगी जन्ममरणा के बन्धन से मुक्त हो जाते हैं। जब जीवरागद्वैष से मुक्त हो अपने समस्त कर्म ईश्वर को समर्पित कर देता है तथा स्थिरचित्त योगी बन जाता है तो उसे जन्म मरणा के चक्र से मुक्ति मिल जाती है। और उसे मोक्ष को प्राप्ति हो जाती है :

त्वय्यावेशितचित्तानां तत्त्वसमर्पितकर्मणाम्।

गतिस्त्वं दोतरागानामभूयः संनिवृत्तये॥⁴

मुमुक्षु परमतत्त्व को प्राणायाम साधक अपने अंतस् में खोजते हैं। वह शिव स्थिर भक्ति और योगक्रियाओं से सुलभता से प्राप्त हो जाते हैं।

वेदान्तेषु यमाहुरेकपुरुषं व्याप्य स्थितं रोदसो

यस्मिन्नीश्वर इत्यजन्यविषयः शब्दो यथार्थधरः।

1. प्रत्यभिज्ञानाज्जोवन्मुक्ति प्रदत्तं प्रयोजनम्।

तन्त्रालोक विवेक, 1.21

2. परमार्थसार वृत्ति : 64-6

3. तन्त्रालोक : 13. 183

4. रघुवंशम् : 10/27

अन्तर्यस्य सुमुक्षुमिर्नियमित प्राणादिभिर्गुण्यते

स स्थाणु रिथरभक्ति योगस्तुलभो निःश्रेयसायास्तु वः ॥ ¹

परमशिव को अपने हृदय में खोजना हो आत्मप्रज्ञाभिज्ञान है। 'शिवोऽहम्' का ज्ञान होने पर मोक्ष प्राप्त हो जाता है। मन को समाधिस्थ अवस्था में वश में करके ही परमतत्त्व को दर्शन किये जा सकते हैं :

मनो नवद्वारनिषिद्धवृत्ति हृदि व्यवस्थाप्य समाधिवश्यम्
यमधरं क्षेत्रविदो विदुस्तमात्मानायात्ममन्यवलोकयन्तम् ॥ ²

गुरुमहिमा :

मोक्षोपाय के रूप में गुरु को महिमा अवर्णनीय है। सुमुक्षु का गुरु के द्वारा ज्ञान प्राप्त होने पर चिदात्मस्वरूप को अनुभूति होता है और सुमुक्षु स्वकल्पित मलों से मुक्त हो जाता है।

रघु में भी जब मोक्ष प्राप्ति को इच्छा जागृत हुई तो वह तत्त्वदर्शी योगियों के साथ इस विषय पर चर्चा करने लगे :

अजितधिगमाय मन्त्रिभिर्गुण्ये नोतिविशारदैरजः ।

अनपायिपदोपलब्धये रघुराप्तैः समिधाप योगिभिः ॥ ³

शक्तिपात :

द्वैतभाव के विनाश हेतु ईश्वर की कृपा आवश्यक है। देवधिदेवशंकर जब भक्त पर अपना अनुग्रह या शक्तिपात करते हैं तो वह पुनर्जन्म के चक्र से मुक्त हो जाता है। अतः भक्त परमात्मा के शक्तिपात का इच्छुक रहता है। कालिदास भी शक्तिपात को महत्त्वपूर्ण मानते हैं। वह प्रार्थना करते हैं कि महादेव जो ऐसी कृपा करें कि मैं जन्म-मरण के बंधन से मुक्त हो जाऊँ और मुझे मोक्ष की प्राप्ति हो।

1. विक्रमोर्वशीयम् : 1/1

2. कुमारसम्भतम् : 3/50

3. रघुवंशम् : 18/17

प्रवर्ततां प्रकृति हिताय पार्थिवः सरस्वतो श्रुतिमहतोमहोयताम् ।
ममापि च क्षयतु नीललोहितः पुनर्भवं परिगतशक्तिरात्मभू ॥ १

मुमुक्षु :

गुरु के द्वारा मुमुक्षु को स्वस्व का प्रत्यभिज्ञान कराया जाता है। अन्ततोगत्वा आत्मसाक्षात्कार को अनुभूति 'स्व' के द्वारा स्व को होता है। कालिदास ने भी मुमुक्षु को मोक्षोपाय के रूप में वर्णित किया है। वह कई श्लोकों में मुमुक्षु का वर्णन करते हैं।² शास्त्र, गुरु और स्व इन तीनों उपायों में स्व हो सर्वोत्तम उपाय है।

प्रत्यभिज्ञादर्शन के दार्शनिकों को यह मान्यता है कि जोव को मुक्ति तत्त्वज्ञान के साक्षात्कार से नहीं अपितु उसके प्रत्यभिज्ञान से होता है। काशैद का अपरनाम प्रत्यभिज्ञादर्शन भी है। इस नाम के पीछे जो सिद्धान्त एवं दृष्टिकोण है उसका सम्बन्ध मोक्ष के प्रसंग से हो है। अन्य भारतीय दर्शन तत्त्वज्ञान के साक्षात्कार से मुक्ति की बात कहते हैं। परन्तु काशैद के दार्शनिकों को अनुभूतिपरक मान्यता यह है कि ज्ञान नहीं अपितु प्रत्यभिज्ञान से मुक्ति होता है। इस मत के अनुसार जोव को शिव से परमैक्य का ज्ञान नहीं अपितु प्रत्यभिज्ञान होता है। यह परमैक्य पहले भी ज्ञात था, किन्तु माया शक्ति के कारण मध्य में विस्मृत हो गया था। अतः उस विस्मृत स्वरूप के पुनः ज्ञान को प्रत्यभिज्ञान कहा जाता है।⁴

इस मोक्ष प्राप्ति को आत्मप्रत्यभिज्ञान भी कहा जाता है। आत्मप्रत्यभिज्ञान का शैवदर्शन में बहुत महत्त्व है क्योंकि इसके द्वारा जोव जगत् में रहता हुआ भी अपने शिवस्वरूप को पहचानकर जीवन्मुक्ति या जीवन्मोक्ष प्राप्त करता है।

1. अभिज्ञान शाकुन्तलम् : 7/35

2. विक्रमोर्वशीयम् : 1/1, कुमारसम्भवम् : 2/5

3. यद्यपि शास्त्रतो गुरुतः स्वत इति अस्ति त्रिधा नियमस्तथापि स्वत इत्यस्य तयोऽस्याय भूतत्वात् तथैव तस्यैव प्रधानं भूतत्वात् तेनैव कथनोपयम् ।

शिवदृष्टि वृत्ति : 2. 19

4. बौद्ध, वेदान्त एवं काश्मीर शैव दर्शन : पृ. 196

कालिदास ने आनन्दवादो शैवदृष्टिके आधार पर अपनी कृतियाँ लिखी हैं। कालिदास को काव्यरचना का उद्देश्य जीव को सांसारिक जीवन से विरक्ति को ओर उन्मुख करना नहीं है। वह जोव को जीवन अभिरामता से साक्षात्कार कराकर आनन्द पूर्वक उसके भोग को प्रेरणा देकर भोग एवं मोक्ष में सामरस्य स्थापित करना चाहते थे। जोव के लिए उसको शिवता तथा सांसारिकता दोनों का ज्ञान आवश्यक है। अतः उन्होंने पुरुष एवं प्रकृति दोनों को उसके पूर्ण वैभव के साथ प्रस्तुत किया है।

द्वैत बुद्धि का विनाश हो मोक्ष है। शिवोऽहम् तक की स्थिति तक पहुँचने के दो रूप हैं एक जोवन्मुक्ति द्वारा दूसरा विदेह मुक्ति द्वारा। कालिदास ने दोनों प्रकार को मोक्षप्राप्तियों का उल्लेख किया है। रघु को दोनों प्रकार को मोक्ष प्राप्त मिलती है। वह जोवनमुक्ति प्राप्त करके कुछ समय बाद विदेह मुक्ति प्राप्त करता है। मोक्ष के स्वरूप एवं मोक्षोपायों को चर्चा के पश्चात् प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि जब सभी कुछ शिवरूप है, सभी मितात्म शिव है, तो मोक्षोपायों को चर्चा क्यों की जाती है, मोक्षोपायों को चर्चा ही व्यर्थ है।

मितात्मा को अपने विरमुक्त स्वरूप का ज्ञान करने के लिए शक्तिपात की आवश्यकता होती है। शैवदर्शन में जोव अथवा नर के परिपूर्णचित्स्वभाव के प्रकाशन में परमेश्वर के शक्तिपात को परमकारण माना गया है। प्रमाता अज्ञानवश बन्धनों में अपने आपको परिबद्ध कर लेता है। जब परमशिव उस पर अनुग्रह करता है तो शक्तिपात के उदय से उसका मल क्षयोन्मुख होने लगता है वह विषयभोग से विमुक्त होने लगता है। तथा बुध्यमान प्रमाता बन जाता है :

आयात शक्तिपातो बुध्यमानः।¹

अतः मोक्षप्राप्ति के लिए शिव हो उपेय है और अन्य मोक्षोपाय शिव से अभिन्न होने के कारण अपना कोई स्वतन्त्र प्रयोजन नहीं रखते। प्रत्यभिज्ञादर्शन के साहित्य में इनको चर्चा व्यवहारार्थ है।

वस्तुतो हि परप्रकाशात्मा शिव एव उपेयः, स च सर्वत एवावभासते तस्य क्वाचिदपि अनपायत्। अतएव नात्र उपायानां किञ्चित्प्रयोजनम् अज्ञान ज्ञापकत्वात्

तेषाम् ।¹

प्रत्यभिज्ञादर्शन में परमशिव को 'बन्ध' एवं मोक्ष दोनों का कारण माना गया है।² शिव हो बन्धन और मोक्ष को विचित्र लीला रचना है :

स्वज्ञान विभवभासन योगेनोद्धृत्योन्नितजात्मानम् ।

इति बन्धमोक्षचित्रां क्रोडां प्रतनोति परमशिवः ॥³

सभी कृत्य चाहे वह बन्धपरक हों या मोक्षपरक उनका सम्पादन परमतत्त्व ही करता है :

स्वतन्त्रस्य शिवस्येच्छा घटरूपो यथा घटः ।

स्वात्मपृच्छादनेच्छैव वस्तुभूतस्तथामलः ॥⁴

मोक्षप्राप्ति का एकमात्र साधन एकाग्रचित्त से हो गई शिव को भक्ति है। यही मोक्षप्राप्ति का सोपान है। कालिदास भी यही कहते हैं :

वेदान्तेषु यमाद्वरेकंपुरुषं व्याप्य स्थितं रोदसौ,

यस्मिन्नोश्वर इत्यनन्यविषयः शब्दो यथार्थाक्षरः ।

अन्तर्यश्च सुमुधुभिर्नियमित प्राणादिर्भिर्मुग्यते

स स्थाणु स्थिरभक्ति योगसुखमोनिःश्रेयसायास्तु वः ॥⁵

वेदान्तो जिन्हें एक ऐसा अकेला पुरुष बताते हैं जो अग्नि और अम्बर में व्याप्त होने पर भी इनसे अलग बना रहता है, जिसका ईश्वर ऐसा सच्चा नाम है और किसी को इस नाम से पुकारा नहीं जा सकता मोक्षप्राप्ति को उरुवाले लोग जिन्हें प्राणायाम साधक अपने हृदय के भीतर खोजते हैं, ऐसे निश्चल भक्ति से मिलनेवाले शिव हमारा कल्याण करें ।

1. तंत्रालोक विवेक, 1.45, पृ. 1.66 पृ.

2. स्वातन्त्र्यमहिमैवायं देवस्य यदसौ पुनः ।

स्वं रूपं परिशुद्धं सत्स्पृष्टा

3. परमार्थसार, का. 33

4. तंत्रालोक : 6, पृ. 65-6

5. विक्रमोर्वशीयम् : 1/1

कालिदास ब्रह्मा, विष्णु, महेश को एक मानते हैं। मोक्ष प्राप्ति के सन्दर्भ में भी उन्होंने इस अद्वैतवाद का निर्वाह किया है— विष्णु की स्तुति करते हुए देवता कहते हैं :

अभ्यासनिगृह्यतेन मनसा हृदयाश्रमः।

ज्योतिर्मयं विचिन्वन्ति योगिनस्त्वां विमुक्तये॥¹

योगी अभ्यास द्वारा विषय भोगों से विरक्त किये गए मन से, हृदय में स्थित प्रकाश स्वरूप मुक्ति के लिए तुम्हारा हो चिन्तन करते हैं। प्रकाशस्वरूप परमतत्त्व को अपने हृदय के भीतर खोजना हो आत्मप्रत्यभिज्ञान है। आत्मप्रत्यभिज्ञान होने पर जीव सर्वोभमायं विभूः।² तथा अहमेव विश्वात्मा को मान्यतानुसार समस्त सत्तामात्र को आत्मोय समझने लगता है। मैं शिव हूँ समग्रशक्तियों का नायक हूँ। समग्र संसार मुझमें प्रतिबिम्बित है जैसा कि दर्पण में घटादि संसार का चितान मुझसे हो होता है। जैसा कि सुप्तव्यक्ति के स्वाप्निक वैचित्र्य प्रस्फुरित होता है प्रकाशरूप में मैं सभी वस्तुओं का आधार हूँ निरोन्द्रय हो कर मैं हो दर्शन श्रवणादि का कर्ता तथा समग्र ज्ञान का स्रोत हूँ, इस अद्वय भावना से द्वैत विनष्ट हो जाता है और जीव शिव में उसी प्रकार लीन हो जाता है जिस प्रकार पानी में पानी।³

शिव के शक्तिपात से ही भक्त को मोक्ष प्राप्ति होती है। कालिदास लिखते हैं — महादेव जो आत्मभू अज हैं ऐसी कृपा करें कि मुझे फिर से जन्म न लेनापड़े अर्थात् मैं जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त हो जाऊँ।

प्रवर्ततां प्रकृतिहिताय पार्थिवः सरस्वतो श्रुतिमहतो महोदयताम्।

ममापि च क्षयपतु नीललोहितः पुनर्भवं परिगतशक्तिरात्मभूः॥⁴

शिव ही मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं। शिव के इस वैभव का वर्णन कालिदास ने

1. रघुवंशम् : 10/23

2. प्रत्यभिज्ञाहृदयम् सूत्र 12 के अन्तर्गत उद्धृत, पृ. 67

3. परमार्थसार विवृति, का. 47-51, पृ. 68-72

4. अभिज्ञानशाकुन्तलम् : 7/35

अनेक प्रकार से अपनी कृतियों में किया है। 'विक्रमोर्वशीयम्' में 'सङ्गमनोयमणि' का वर्णन है जो पुरुरवा और उर्वशी के विरहजन्य दुःख को दूर करके उनका मिलन करानेवाला बनती है। यह संगमनोयमणि पार्वती के चरणों को लाली से बना है।

सङ्गमनोय इति मणि शैलसुताः चरणरागयो निरयम् ।

आवहति धार्यमाणः सङ्गमाचिरात्प्रियजेन ।।¹

पार्वती शिव से अभिन्न हैं। शिव-पार्वती का सामरस्य अवर्णनीय है। अतः अनुग्रह चाहे शिव द्वारा हो या पार्वती द्वारा एक ही बात है। शिव पार्वती को कृपा बिना मोक्ष असंभव है। उर्वशी मुनि के शाप का निवारण बताते हुए कहती हैं— कि दो उन अं तावान्तो गोरोरणा राम संभवं मणिं विणा तदो ण मुञ्चिस्तदिति ।²

पार्वती को 'शिवा' भी कहते हैं। 'शिव-शिव' है। शिवा का अर्थ है पार्वती। शिव का अर्थ है मोक्ष और शिवा का अर्थ है मोक्ष देनेवाला।³ विभिन्न रूपधारी शिव ही मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं। गंगा शिव को जलरूप मूर्ति है :

शंकरम्भीमयी मूर्ति सैव देवी सुरावगा ।⁴

गंगा तो शिव के मस्तिष्क को माला है।⁵ वह कृष्णसर्प से अलंकृत भस्म लगाये शिवजी के शरीर के समान सुशोभित होता है।⁶ गंगा समस्त दुःखों का विनाश करके

1. विक्रमोर्वशीयम् : 4/66

2. विक्रमोर्वशीयम् , अंक 4, पृ. 236

3. विस्तार हेतु दृष्टव्य, शक्ति एण्ड हर एपोसोडस, पृ. 67-8

4. कुमारसम्भवम् : 10/26

5. अत्रिभिषेकाय तपोधनानां सप्तर्षिहस्तोदधृतहेमपदमाम् ।

प्रवर्तयामास किलानुसूया त्रिस्तोतसं त्र्यम्बकमौलिमालाम् ।।

रघुवंशम्, 13/51

6. क्वचिच्च कृष्णोरगभूषणेव भस्मांगारागा तनुरोश्वरस्य ।

पश्यानवधांङ्गे विभाति गंगा भिन्नप्रवाहा यमुनातरंगैः ।।

रघुवंशम् : 13/57

सोढो बना कर भक्तों को स्वर्ग पहुँचादेतो है और मोक्ष दे डालतो है :

स्वर्गारोहणनिःश्रेणि मोक्षमार्गधिदेवता ।

उदारदुरितोद्धारिणी दुर्गतिारिणी ॥ ¹

गंगा यमुना के संगम में स्नान करने से आत्मा पवित्र हो जाती है और तत्त्वज्ञान के बिना मरने पर भी जोव शरीरबन्ध से मुक्त होजाता है। अर्थात् वह जन्म मरण से छूटजाता है उसे मोक्ष प्राप्त हो जाता है :

समुद्रपत्न्योर्जलसन्निपाते पूतात्मनामत्र किलाभिषेकात् ।

तत्त्वावबोधेन विनाऽपि मूयस्तनुत्यजां नास्ति शरीरबन्धः ॥ ²

कालिदास भक्त को भक्ति हेतु व्यापक दृष्टि प्रदान करते हैं। मेघदूत में यक्ष मेघ का मार्ग निर्देशन करते हुए कहता है- वहाँ हिमालय पर्वत की शिला पर तुम्हें शिवजी के पैर के छाप बनो हुई मिलेगी। जिसको सिद्धलिंग पूजा करते हैं। तुम भी भक्तिभाव से हृककर उसको प्रदक्षिणा कर लेना क्योंकि श्रद्धा सेपूर्ण भक्तों के पाप उसके दर्शन से ही धुल जाता है। और वह शरीर त्याग करने पर सदा के लिए शिव जी के गण हो जाते हैं। ³

कालिदास ने इस श्लोक में भी मोक्ष प्राप्ति से पूर्व मलों को निवृत्ति की बात कही है और शिव को ही मोक्ष प्रदान करनेवाला माना है। कालिदास को मोक्ष सम्बन्धी धारणायें और विश्वास प्रत्यभिज्ञादर्शन के आलोक से आलोकित है।

1. कुमारसम्भवम् : 10/29

2. रघुवंशम् : 13/58

3. तत्र व्यक्तं दृष्ट्वादि चरणन्यासमर्धेन्दुमौलेः ।

शाश्वत्सिद्धैरूपयितबलिं भक्तिनम्रः परोयाः ।

यस्मिन्दृष्टे करणविगमादूर्ध्वमुद्धत पापाः ।

कल्पिष्यन्ते तिथिरगणमदप्राप्तये श्रद्धधानाः ॥

निष्कर्ष

महाकवि कालिदास को जन्मतिथि और जन्म स्थान भले ही अज्ञात हो परन्तु उनको अलौकिक काव्यप्रतिभा और तत्त्वज्ञान का परिचय उनको कृतियों में उपलब्ध होता है। कालिदास के तत्त्वज्ञान का परीक्षण उन्हें शैवमतावलम्बी ठहराता है। कालिदास को कृतियों को दार्शनिक पृष्ठभूमि का आधारभूत दर्शन काश्मीर शैवदर्शन अथवा प्रत्यभिज्ञादर्शन ही है। प्रस्तुत शोधकार्य से इस स्थापना को सहज पुष्टि हो जाती है।

प्रत्यभिज्ञादर्शन का एक ही प्रमुख तत्त्व है वह है शिवतत्त्व। अन्य सभी तत्त्व तो शिव की शक्तियों के ही अपरनाम हैं, जिन्हें विमर्श, स्वातन्त्र्य अथवा प्रकाश भी कहा जाता है। अभेदवाद, आनन्दवाद, सामरस्यवाद यह सभी शिव की शक्तियों के ही विस्तृत रूप हैं। कालिदास ने अत्यन्त कुशलता से अपनी कृतियों में शिव के स्वरूप का सन्निवेश किया है।

इस शोध ग्रन्थ के विभिन्न अध्यायों का निष्कर्ष कुछ इस प्रकार है :

प्रथम अध्याय महाकवि कालिदास : व्यक्तित्व एवं कृतित्व से यह निष्कर्ष निकलता है कि कालिदास का जन्मस्थान काश्मीर है। प्रत्यभिज्ञादर्शन के काश्मीर का दर्शन होने के कारण कालिदास इस दर्शन के अनुयायी थे। इस मत को बल मिलता है। द्वितीय अध्याय है प्रत्यभिज्ञादर्शन का साहित्य एवं साहित्यकार- इस अध्याय में बताए गए ग्रन्थों के आधार पर ही प्रत्यभिज्ञादर्शन के तत्त्वों को बताया गया है। इस साहित्य के आगमग्रन्थों की शैली की तुलना कालिदास के ग्रन्थों की शैली से करके उनको कृतियों पर प्रत्यभिज्ञादर्शन के साहित्य की छाप बताई गई है। तृतीय अध्याय है प्रत्यभिज्ञादर्शन के छिन्मूक तत्त्व। इस अध्याय के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि कालिदास को कृतियों में प्रत्यभिज्ञादर्शन के तत्त्व है। चतुर्थ अध्याय है जगत् सम्बन्धी विविध तत्त्व। इस अध्याय के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि कालिदास प्रत्यभिज्ञादर्शन के अनुसार ही सृष्टि, जगत् सम्बन्धी विचारों को मसते थे। तथा जड़कारणवाद का दृढ़ता से विरोध किया है। पंचम अध्याय है- कालिदास के नाटकीय कथानक एवं प्रत्यभिज्ञादर्शन - इस अध्याय से यह निष्कर्ष प्राप्त होता है

कि कालिदास को कृतियों का रचनासूत्र प्रत्यक्षतः प्रत्यभिज्ञादर्शन में प्राप्त होता है। प्रत्यभिज्ञादर्शन कालिदास को कृतियों को प्रकृति है। षष्ठम अध्याय है- मोक्ष। इस अध्याय के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कालिदास को मोक्ष सम्बन्धी मान्यताएँ भी प्रत्यभिज्ञादर्शन के अनुकूल हैं। प्रत्यभिज्ञादर्शन में अन्य दर्शनों में मान्य जड़ अथवा हेय पदार्थों को मुक्ति को भी स्वीकार किया गया है। इस दर्शन को मान्यतानुसार -यदि परम शिव चाहे तो इन्हें भी मोक्ष प्रदान कर सकता है। कालिदास मेघ की मोक्ष प्राप्ति को बात कहते हैं। वह प्रत्यभिज्ञादर्शन के अनुयायी थे। परिशिष्ट भाग में कालिदास के नाम से प्रचलित चिदगगनचन्द्रिका नामक ग्रन्थ में प्रत्यभिज्ञादर्शन के तत्त्वों को दिखाया गया है।

प्रत्यभिज्ञादर्शन के साहित्य के कुछ समय पूर्व ही प्रकाशित होने के कारण इसके साहित्य के अध्ययन एवं शोध को परम्परा अभी शैशवकाल में है। इस दर्शन के मौलिक साहित्य का रचनाकाल नवीं शताब्दी है। अतः इसके बाद के ग्रन्थों को प्रत्यभिज्ञादर्शन की मान्यताओं पर आधारित एवं प्रभावित ग्रन्थ माना जाता है। जैसे-नवीं शताब्दी में रत्नाकर द्वारा रचित हरविजय महाकाव्यम्। डॉ. श्रीकान्त शुक्ला ने अपने ग्रन्थ 'महाकवीरत्नाकरस्तदोयं-हरविजयमयं' में रत्नाकर की भक्ति भावना पद्धति में प्रत्यभिज्ञादर्शन के सिद्धान्तों का भी प्रभाव बताया है। कालिदास का काल और प्रत्यभिज्ञादर्शन की स्थापना के काल के आधार पर इस तथ्य के प्रति असन्तोष का भाव पाया जाता है कि कालिदास को कृतियों में निहित मूलदर्शन प्रत्यभिज्ञादर्शन है। क्योंकि कालिदास का काल ईसा की चौथी शताब्दी के बाद मानने में विद्वानों को आपत्ति है। और प्रत्यभिज्ञादर्शन की स्थापना का काल आठवीं और नवीं शताब्दी माना जाता है। यह आपत्ति अनुचित है- व्यवस्थित दर्शन की स्थापना की दृष्टि से प्रत्यभिज्ञादर्शन की स्थापना का काल नवीं शताब्दी है। वस्तुतः यह अत्यन्त प्राचीन दर्शन है।

भारतीय आध्यात्मिक चिन्तन को धर्म एवं दर्शन रूपी दो धारार्यें सतत् प्रवाहमान हैं धर्म एवं दर्शन में पूर्वापरता की चर्चा का पारमार्थिक औचित्य नहीं है तथापि व्यवहारिकता की दृष्टि से दर्शन धर्म का ही विकसित रूप है। स्थूल दृष्टि से काश्मीर

शैव दर्शन को मान्यताओं का आधार शैवधर्म है। शैवदर्शन एक अत्यन्त प्राचीन दर्शन है। काश्मीर में अंकुरित, पल्लवित और पुष्पित होने के कारण काश्मीर शैवदर्शन के नाम से रूढ़ हो गया है। यह बौद्धदर्शन और निर्गुण अद्वैतवादी दर्शन के साथ-साथ चलता रहा। बौद्धदर्शन और अद्वैत वेदान्त दर्शन के अधिक प्रभावशाली हो जाने के कारण काश्मीर शैवदर्शन को मान्यताओं को भी अद्वैतवेदान्त की मान्यताओं की भाँति विश्लेषित किया जाने लगा था। अद्वैतवादो काश्मीर शैवदर्शन को स्वतन्त्र सत्ता स्वीकार करने में हिचकिचाते थे। परिणामतः प्रत्यभिज्ञादर्शन का विकास अवरूढ़ हो गया। नवों शताब्दों में सोमानन्द की शिवदृष्टि तथा भट्टकल्लट की स्पन्दकारिका में शैवदर्शन के स्वतन्त्र अस्तित्व का उद्घोष किया गया। उत्पलाचार्य को शास्त्रीय चिन्तन की नोंव पर अभिनवगुप्त ने दार्शनिक प्राप्ताद खड़ा किया। पूर्व स्थापित शैवमत के विचारों का उत्कर्ष काल आठवों और नवों शताब्दों है। इस काल में ही व्यवस्थित दर्शन की दृष्टि से प्रत्यभिज्ञादर्शन को स्थापना हुई। इस दर्शन का मौलिक साहित्य दसवों शती में एवं टोका साहित्य दसवों शती से बारहवों शती तक लिखा गया है। इस दर्शन के मूल साहित्य का मुद्रण एवं प्रकाशन विलम्ब से होने के कारण इसके अध्ययन एवं शोध की परम्परा भी विलम्ब से आरम्भ हुई। भारतीय दर्शन के गौरवपूर्ण इतिहास में इस दर्शन के महत्त्व को स्वीकार करने में संस्कारित बुद्धि संकोच कर रहो है और इस दर्शन के अध्ययन और शोध के प्रति अभीभी विद्वान उदासीन हैं।

काश्मीर शैवदृष्टि भारतीय चिन्तन की चिर प्राचीनता और नितनवीनता का एक साथ प्रतिनिधित्व करती है। यह दर्शन आदर्शात्मक होने के साथ-साथ व्यवहारिक भी है। महाकवि कालिदास की कृतियों की भीयहो विशेषता है कि वह आदर्श व्यवहारिक जीवन के लिए जीवन दर्शन प्रस्तुत करती है और जीवन के बदलते हुए सन्दर्भों में आज भी अपनी प्रासंगिकता बनाए हुए है।

परिशिष्ट

चिदगगनचन्द्रिका :

शिव तथा शक्ति का भक्तियुक्त उल्लेख कालिदास की कृतियों में सर्वत्र पाया जाता है। चिदगगनचन्द्रिका एक तान्त्रिक ग्रंथ है। इस ग्रन्थ में 312 स्तुतिपरक श्लोक हैं जिसमें कालि को स्तुति की गई है।

इस ग्रन्थ का महत्त्व कवि बताता है—कि यहाँ कालिदास रूपी चन्द्र से उत्पन्न, आनन्द देनेवाला यह स्तुति चिदगगनचन्द्रिका रूपी समुद्र से आपका भव रूपी दावानल का ताप शमन करें। चिदरूपी अग्नि से सतत शिव को देखने के लिए तथा अन्वय में सद्भाव के लिए यदि आपका चित्त पूर्णभाव चाहता है तो इसका चिदगगनचन्द्रिका का सेवन करें।

विषय भेद होने के कारण इसे कालिदास की कृति मानने में सन्देह किया जाता है। कलकत्ता टेक्स सोरोज़ से 1937 में स्वामी विक्रमतोर्थ के संपादन में चिदगगनचन्द्रिका का प्रकाशन हुआ। उन्होंने इस ग्रन्थ के उपोद्घात तथा पुष्पिका में इसको कालिदास की रचना माना है। चिदगगनचन्द्रिका रघुवंशकार कालिदास की ही रचना है। इस विषय पर विद्वानों में मतभेद है।

संस्कृत वांगमय में 11 से भी अधिक कालिदासों का उल्लेख प्राप्त होता है। वह कौन से कालिदास की रचना है, यह प्रामाणिक नहीं है। चिदगगनचन्द्रिका में कालिदास को अन्य रचनाओं से वैषम्य भी पाया जाता है जैसे—कालिदास ने अन्य ग्रन्थों के मंगलाचरणा में कहीं भी श्रीगणेश की स्तुति नहीं की है परन्तु चिदगगनचन्द्रिका के प्रारम्भ में ही श्रीगणेश का स्मरण किया गया है।

चिदगगनचन्द्रिका में पतंजलि को महर्षि माना गया है।² परन्तु कालिदास पतंजलि से बहुत पहले नहीं हुए हैं इसलिए महाकवि पतंजलि को महर्षि नहीं कह सकते।

चिदगगनचन्द्रिका के एक श्लोक में 'कालिदास' कालिदास की पदवी बताई गई है, नाम नहीं :

1. चिदगगनचन्द्रिका : 3

2. चिदगगनचन्द्रिका, : 9

यदविनिश्चयपदं च ते

योम्बवेद कुरु तन्मुखं जगत् ।

कालिदास पदवीं तवाश्रितः

त्त्वतप्रसादकृतं वाग् विजृम्भणः ॥ ¹

हे अम्बिके, यह स्तुति निश्चय का स्थान है। इस प्रकार जो जानता है उसको जगत् में प्रमुख बना देना। तेरे आश्रय से मैंने कालिदास पदवी धारणा की है तथा तेरो कृपा से हो मुझे वाणी का वैभव प्राप्त हुआ है। तथा अन्तिम श्लोक में कवि अपना नाम श्रीवत्स बताता है।

पूर्णपोषकृतं सिद्धेस्तदभावस्तवमादरात् ।

वा नरार्थं महागुह्यं श्रीवत्सो विदधेत् ॥ ²

कुल प्रकाशिका व्याख्याकार ने श्रीवत्स कवि का मुख्य नाम माना है। इस प्रकार कालिदास पदवी धारणा करनेवाला यह श्रीवत्स महाकवि कालिदास से भिन्न होना चाहिए। चिदगगनचन्द्रिका में भी प्रणेता ने कालिदास पदवी का बार-बार निर्देश किया है। चिदगगनचन्द्रिका का उद्धरण योगिनोद्दयगोतिका नामक ग्रन्थ में आया है। इसके टीकाकार का समय 14वीं सदी का अन्तिम भाग निश्चित किया जाता है। इससे पहले महाकविमंजरी में गोरखनाथ महेश्वरानन्द ने चिदगगनचन्द्रिका के श्लोकों को प्रमाणरूप से उद्धृत किया है। गोरखनाथ महेश्वरनाथ का काल 14वीं सदी के प्रारम्भ के बाद का नहीं हो सकता। अतः चिदगगनचन्द्रिकाकार कालिदास का काल भी ई. 13वीं शती के बाद का नहीं हो सकता।

कुछ विद्वान् चिदगगनचन्द्रिका को कालिदास की ही कृति मानते हैं। यह कालिदास की ही रचना है इस सम्बन्ध में यह मत प्रस्तुत किए जाते हैं :

बटुकनाथ शास्त्री इस तान्त्रिक दार्शनिक ग्रन्थ को कालिदास की ही रचना मानते हैं। इस ग्रन्थ के श्लोकों में कालिदास शब्द का प्रयोग बार-बार हुआ है। चिदगगनचन्द्रिका के कई श्लोकों में रघुवंशम्, कुमारसम्भवम्, अभिज्ञानशाकुन्तलम् तथा मालविकाग्निमित्रम् के कई श्लोकों से साम्य दृष्टिगोचर होता है।

1. चिदगगनचन्द्रिका, : 3.6

2. चिदगगनचन्द्रिका, 3.2

चिदगगनचन्द्रिका :

राजानात् प्रकृतिरञ्जनाच्यमाम् ।¹

रघुवंशम् :

यथा प्रह्लादनाच्यन्द्रः प्रतापात् तपनो यथा ।
तथैव सो भूदन्वर्थो राजा प्रकृतिरञ्जनात् ॥²

चिदगगनचन्द्रिका :

या हार्मव्युदितवाक् स च सा
यः प्रकाशतुलितात्मविग्रहः ।
यौ मिथः समुदिता विहान्मुखौ
तौ षडध्वपितरौ श्रये शिवौ ॥³

रघुवंशम् :

वागार्थाविव संपृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये ।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतो परमेश्वरौ ॥⁴

चिदगगनचन्द्रिका :

स्थूलं सूक्ष्मं परं त्रिविधमिहजगत् यत्प्रधावेशसिद्धया
युक्तं सत्रा यदोया स्फुरति य परतः स्व प्रथैक स्वभावा ।
भापूर्ति य विमर्शक्रियमनुपतिता लक्ष्यते लोकवृत्तिः
सन्मार्गलोकनाय व्यपनयतु स वस्तामसो वृत्तिमोशः ॥⁵

मालविकाग्निमित्रम् :

एकैश्वर्ये स्थितो पि प्रणतबहुफले यः स्वयं कृत्तिवासाः,

1. चिदगगनचन्द्रिका : 2/65

2. रघुवंशम् : 4/12

3. चिदगगनचन्द्रिका : 1/16

4. रघुवंशम् : 1/1

5. चिदगगनचन्द्रिका : 2

कान्तासंमिश्रदेहोप्यविषयमनसां यः परस्ताद यतोनाम् ।

अष्टाभिर्षस्य कृत्स्नं जगदीप तनुभिर्विभ्रतोनाभिनामः

सन्मार्गलोकनाय व्यपनयतु स वस्तामसो वृत्तिमोशः ॥ ¹

कालिदास को अन्य प्रामाणिक कृतियों और चिदगगनचन्द्रिका में भावसाम्य भी पाया जाता है। कालिदास का समस्त वांगमय शैवदर्शन से प्रभावित है। सर्वत्र शिव शक्ति या दोनों का निर्देश किया है। कालिदास ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थों में अद्वैत का आग्रह रखा है। यही बात चिदगगनचन्द्रिका में भी देखी जा सकती है।

चिदगगनचन्द्रिका में कालिदास शिव को जगत् का कारण मानते हैं - जिसने उन्मेष-निमेष करनेवाला दोनों प्रकार का विश्व पेट में धारण किया है। वह तू है अम्बिके! शिवरूपी समुद्र को लहर है, जो देखने को, प्रकट करने को तथा पकड़ने को तैयार रहती है। ² इस प्रकार शिव ही जगत् के कारण हैं तथा शिव और पार्वती जगत् के माता-पिता हैं। ³

चिदगगनचन्द्रिका के विभिन्न श्लोकों में वाक् के माध्यम से शक्ति का स्वरूप वर्णित हुआ है। हे अम्बिके! परावाणी स्त्री तेरी स्पन्दवृत्ति लहरें बिजली के समान चंचल हैं। वह उदय से लेकर ही कल्पना को छोड़कर पश्यन्ती मध्यमा तथा बैखरो तीनों वृत्तियों से सदा अलग रहती है। ⁴ तू अपने मार्ग पर चलती है। सृष्टि से लेकर क्रम में जो अलग होने को किया है वह निर्मल रूप में उपयोग करती हुई परा, पश्यन्ती, मध्यमा, बैखरो इन चारों वृत्तियों का समावेश कर लेती है। ⁵

प्रत्यभिज्ञादर्शन का मुख्यभाव सामरस्य है। यह भाव भी चिदगगनचन्द्रिका

1. मालविकाग्निमित्रम् : 1/1

2. चिदगगनचन्द्रिका : 222

3. चिदगगनचन्द्रिका : 16

4. चिदगगनचन्द्रिका : 173

5. चिदगगनचन्द्रिका : 174

के श्लोकों में मिलता है :

अम्ब । शक्तिवपुषा त्वयोन्मिष

दुपंया समरस शिवो यदा ।

यत्तदोल्लसित वीर्यमूर्जितं

पीठ एषहि महांस्त्वदुत्थितः ॥ ¹

हे अम्बिके । जब शक्ति के रूप में विलास करते हुए तेरे साथ शिव समरस हो जाते हैं तब जो तेजस्वी वीर्य उल्लसित होता है, वह तुझसे पैदा हुआ महान् पीठ है ।

चिदगगनचन्द्रिका में वर्णित मोक्ष का स्वरूप प्रत्यभिज्ञादर्शन के अनुसार ही है । इस दर्शन की मान्यता के अनुसार शिव ही मोक्ष प्रदान करने का प्रमुख उपाय है । इस ग्रन्थ में कवि लिखता है- न तो वेदों की वाणियों और न आगम तेरे पास ले जाते हैं क्योंकि उनका आश्रय द्वैत में ही रखा हुआ है । हे परमेश्वरी ! यज्ञ तथा योग की विधि भी तेरे इस स्वरूप को ओर नहीं ले जाती ।

न श्रुतिर्न च गिरौ न चागमा

खण्डवस्तु विनिवेशिताशयाः ।

त्वां नयान्ति परमेशि ते मखा

यागयोगविधयश्च ने दृशीम् ॥ ²

जिसके द्वारा आय चैतन्य के प्रसारण से यह मूर्तिर्भित्त {मलादि से आच्छादित} हो जाती है, उस अक्षय शिव की उपासना करके उसके शक्तिचक्र द्वारा मुक्त हो जाती है :

आयचित्प्रसरमूर्तिरम्बके

पतितां प्रजोत यत्कृतास्पदा ।

अक्षयं विसृपास्य सज्जनः

शक्तिचक्र जनितः प्रमुच्यते ॥ ³

1. चिदगगनचन्द्रिका : 76

2. चिदगगनचन्द्रिका : 286

3. चिदगगनचन्द्रिका : 75

परन्तु मोक्ष प्राप्ति से पूर्व मलों का परिहार आवश्यक माना है। और इस श्लोक में लिखा है कि ईश्वर, शिव सन्मार्ग के दर्शन हेतु हम सबकी तामसी वृत्तियों को दूर करें।¹ हे शिवे। तेरे चरणों के स्मरणा मात्र से जिनका पाप नष्ट हो गया है, सभी ओर प्रकाश फैल गया है, ऐसा सिद्धों का समूह यहाँ पर आनन्द को प्राप्त करता है।²

गुरु को महिमा तथा योगसमाधि का भी वर्णन है :

हे अम्बिके, नित्यता आदि गुणों से लक्षित पद में ज्ञान रूप से भी तेरी कल्पना नहीं की जा सकती। तुझमें लीन होने के लिए गुरु का आश्रय आवश्यक है। उसके आश्रय बिना अनुभूति नहीं की जा सकती।³

योगसमाधि का वर्णन :

दृग् विधत इह विश्वमाम्बिके

तत्पुनः स्थिरयति स्मृतिस्तव।

तन्निर्गोपमिहिता निषादसि

त्वं तु योगतमसोत्पनाश्रिता ॥⁴

इस प्रकार स्पष्ट है कि चिदगगनचन्द्रिका पर कश्मीर शैव दर्शन की ही छाप है।

1. चिदगगनचन्द्रिका, 2

2. चिदगगनचन्द्रिका, 267

3. चिदगगनचन्द्रिका, 287

4. चिदगगनचन्द्रिका, 210

पारिभाषिक शब्दकोश

अणुः	सकल प्रमाता
अनुग्रहः	शिव का पाँचवा कृत्य, दैवोकृपा ।
अनुत्तरः	वह पारमार्थिक भूमि जिससे परे कुछ नहीं तत्त्वातीत अवस्था ।
अपवर्ग	मोक्ष
अव्यक्त	अप्रकट, अदृश्य, अनाविर्भूत ।
अहंभाव	मैं की अनुभूति
आभासन	सृष्टि
आनन्द	आनन्द, शिव की शक्ति का स्वरूप ।
इच्छा	सदा शिव को प्रधान चेतना
इदन्ता	इदं ॥यह॥ को चेतना ।
ईश्वरतत्त्व	शिव से गिनने पर चौथा तत्त्व ॥शिव, शक्ति, सदा शिव, ईश्वर ॥ इसमें अहं ॥मैं॥ और इदं ॥यह॥ दोनों परामर्श ॥चेतना॥ स्फुट रहता है ।
उन्मेष	सृष्टि का प्रारम्भ, स्फुरण ।
कार्ममलम्	शुभाशुभ अनुष्ठान, कर्म के परिणामस्वरूप चित्त में अदृष्टित वासना या संस्कार का मल ।
चित्	शुद्ध परम निरुपाधिक चैतन्य सब विकारों का आविष्कृत अधिष्ठान ।
चित्तम्	चितिशक्ति के संकोच से जन्य सत्यप्रधानस्वरूपी चेतना, माया प्रमाता का स्वरूप ।
चितिः	चेतन शक्ति
चेतनः	आत्मा, विश्वात्मा, चैतन्यविशिष्ट जीव, प्राणी ।
जीव	देहावच्छिन्न चैतन्य, जीवात्मा ।
जीवन्मुक्ति	देह में रहते हुए जीते जो हो जानेवाली मुक्ति

ज्ञान	सत्यबोध, ईश्वर की शक्ति
निमेष	विश्व का परमशिव में लीन हो जाना।
पंचकृत्य	सृष्टि, स्थिति, संहार, विलय और अनुग्रह यह शिव के पांच कृत्य हैं।
परमशिव	परमसत्, परमार्थ, अनुत्तर, परमानन्दमय प्रकाशघन शिव।
परमार्थ	सर्वोत्कृष्ट सत् तात्त्विक सत्य, यथार्थतत्त्व
परावाक्	परमशिव को चित्-स्फन्द रूपी शक्तिः अव्यक्त शब्द विश्वचेतना परमशिव को सर्वोत्कृष्ट शक्ति, चित्ति पारमेश्वरो स्वातन्त्र्य शक्ति।
प्रकाश	चेतनशक्ति, आत्मभिव्यक्ति-तत्त्व, चैतन्य जिसके द्वारा सब कुछ प्रकाशित हो।
प्रकृति	बुद्धि से लेकर पृथिवी तक की अभिव्यक्ति का उत्सव प्रभाव
प्रत्यभिज्ञा	पहचान, यह ज्ञान कि परमेश्वर और जोवात्मा एक है।
बन्धः	शिव तत्त्व का अज्ञान
भाव	वाङ्मय अथवा आन्तरिक सत्ता, विषय।
भूमिका	चिदानन्दधनस्वात्मस्वरूप शिव की अभिव्यक्ति का उपाय।
भोक्ता	सुख दुःख का अनुभव करनेवाला।
माया	दुर्घट कार्य को भी सम्पादन करनेवाली शक्ति विशेष। शुद्धविद्या से नोचे का तत्त्व
मुक्तिः	आत्मतत्त्व का परिज्ञान, अज्ञान को दूर करके अपने स्वरूप को अभिव्यक्ति, अथवा विश्वोत्तीर्ण परम शिव से तादात्म्य।

विकल्पः	जीव को भेदमूलक संकुचित भावना
विमर्शः	शब्दार्थ, अनुभव, ज्ञान। इस शास्त्र में पारिभाषिक अर्थ-परम शिव को ज्ञान-क्रियात्मक आत्मसंवित्ति रूपी शक्ति जिससे सृष्टि होती है।
विश्वम्	सदा शिव से लेकर अवनिपर्यन्त तत्त्वों का समूह, सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड।
विश्वोत्तोर्यम्	विश्व से परे, भौतिक संसृति से परे
शक्तिः	शिव का अन्तर्बल जिसके द्वारा वह पंचकृत्य करता है।
शक्तिपातः	अनुग्रह शक्ति का स्फुरण।
शिवः	परम प्रमाता, सत्, परमार्थ, प्रथम तत्त्व।
शिवतत्त्व	36 तत्त्वों में आदि तत्त्व, इसका लक्षण है। चित् स्वरूप।
संहार	जगत् का शिव में लय।
समावेश	पारमेश्वर्य भूमिः, शिव या शक्ति से आविष्ट होना, वैयक्तिक चेतना का ईश्वरीय चेतना में लय।
सामरस्य	चेतना का एकात्म्य, शिव और शक्ति का तादात्म्य।
सृष्टि	सर्जन, निस्सरण, प्रकटीकरण।
स्वातन्त्र्यम्	क्रियाशक्ति, परमशिव का निरपेक्ष अबाधित इच्छानुसार कर्तृत्व।
हृदय	केन्द्रोपे चेतना, आध्यात्मिक केन्द्र।

पारिभाषिक शब्दकोश के स्रोत ग्रन्थ

प्रतिभिज्ञाहृदयम्, अनूदित-विशाल प्रसाद त्रिपाठी
परमार्थसार, अनूदित-कमला द्विवेदी

सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची

संस्कृत-ग्रन्थ

अज प्रमातृसिद्धिः , उत्पलाचार्य, सं. मधुसूदन कौल शास्त्री, काश्मीर संस्कृत ग्रन्थावली
34, श्रीनगर, 1921

ईश्वरप्रतिभिज्ञाकारिका, उत्पलाचार्य, सं. मधुसूदन कौल शास्त्री, काश्मीर संस्कृत
ग्रन्थावली, 1921

ईश्वरप्रतिभिज्ञा, 1-4, उत्पलाचार्य, बूटाला एण्ड कम्पनी, जवाहर नगर, देहली, 1984

ईश्वरप्रतिभिज्ञा विवृतिविमर्शिनो, भाग 1-3, अभिनवगुप्त सं. मधुसूदन कौलशास्त्री,
काश्मीर संस्कृत ग्रन्थावली, श्रीनगर, 1938, 41, 43

ईश्वरसिद्धिः, उत्पलाचार्य सं. मधुसूदन कौलशास्त्री, काश्मीर संस्कृत ग्रन्थावली,
34, श्रीनगर, 1921

कालिदास ग्रन्थावली, सम्पादक, चतुर्वेदो सोताराम, भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ़
स. 2019 वि.तृतीय संस्करण ।

कालिदास ग्रन्थावली, द्विवेदो रेवा प्रसाद, द्वितीय संस्करण काशी हिन्दू
विश्वविद्यालय, वाराणसी, 1986

तन्त्रसारः , अभिनवगुप्त सं. मुकुन्दराम शास्त्री, बम्बई, 1918

तन्त्रसारः , सम्पादक. म.म. श्री कृष्णानन्द वागेश भट्टाचार्य चौखम्बा संस्कृत
सिरोज आफिस, बनारस, 1938

तन्त्रालोक, भाग 1-12, अभिनवगुप्त, टीका जयरथ सं. मधुसूदन कौलशास्त्री संस्कृत
ग्रन्थावली, 1918-38, 1918, 1921, 1921, 1922, 1922,
1921, 1924, 1926, 1938, 1933, 1936, 1938 ।

नेत्रतन्त्र, भाग 1-2, उद्योत टीका-क्षेमराज

परमार्थसारः, अभिनवगुप्त, काश्मीर संस्कृत ग्रन्थावली, 7, श्रीनगर, 1916

परमार्थसार विवृतिः , योगराज, काश्मीर संस्कृत ग्रन्थावली, 7, श्रीनगर, 1916

परमार्थसार, अभिनवगुप्त, टीका एवं अनुवाद, डॉ. कमला द्विवेदी मोतीलाल बनारसीदास
वाराणसी, 1948

प्रत्यभिज्ञाहृदयम् , क्षेमराज काश्मीर संस्कृत ग्रन्थावली, श्रीनगर, 1916

प्रत्यभिज्ञाहृदयम्, क्षेमराज अंग्रेजी अनुवाद, जयदेव सिंह, मोतीलाल बनारसीदास,
दिल्ली, 1963

प्रत्यभिज्ञाहृदयम्, क्षेमराज हिन्दी अनुवाद, विशालप्रसाद त्रिपाठी, नेशनल पब्लिशिंग
हाउस, दिल्ली, 1969

बोधपंचदशिका, परमार्थचर्चा, मण्डित हरभट्टशास्त्र कृत विवरणा, काश्मीर संस्कृत
ग्रन्थावली, 1947

भारकरो, भाग 1-2, भास्कर कण्ठ, सं. अप्पर एवं पाण्डेय, सरस्वती भवन, 1938, 50
महार्थमंजरी, महेश्वररानन्द, सं. कुकुन्दराम शास्त्री, काश्मीर संस्कृत ग्रन्थावली, 1918
माण्डूक्यकारिका, गोता प्रेस, गोरखपुर

विज्ञानभैरवः, क्षेमराज, सं. मुकुन्दरामशास्त्री, काश्मीर संस्कृत ग्रन्थावली, 1918

शिवट्टुष्टि, सोमानन्द, सं. मधुसूदन कौलशास्त्री, काश्मीर संस्कृत ग्रन्थावली, 1934

शिवट्टुष्टित्वत्तिः, उत्पलाचार्य, सं. मधुसूदन कौलशास्त्री, काश्मीर संस्कृत ग्रन्थावली,
1934

शिवसूत्रम्, सं. मधुसूदन कौलशास्त्री, काश्मीर संस्कृत ग्रन्थावली, 1925

शिवसूत्रविमर्शिनो, क्षेमराज, काश्मीर संस्कृत ग्रन्थावली, 1911

श्रीशिवस्तोत्रावली, क्षेमराज, सं. एवं हिन्दी अनुवाद राजानक लक्ष्मण, चौखम्बा संस्कृत
सिरोज, वाराणसी, 1964

स्पन्दकारिका, वसुगुप्त, सं. मधुसूदन कौलशास्त्री, काश्मीर संस्कृत ग्रन्थावली, श्रीनगर,
1925

स्पन्दकारिका निर्णयः, क्षेमराज, सं. मधुसूदन कौल शास्त्री, काश्मीर संस्कृत ग्रन्थावली,
1925 I

स्पन्दकारिकाविवृतिः, रामकण्ठ, सं. जे. सो. चटर्जी, काश्मीर संस्कृत ग्रन्थावली,
श्रीनगर, 1969 I

स्पन्दसंदोहः, क्षेमराज, सं. मुकुन्दराम शास्त्री, काश्मीर संस्कृत ग्रन्थावली, श्रीनगर, 1917

स्वच्छन्दतन्त्रम्, भाग 1-7, क्षेमराज, सं. मधुसूदन कौलशास्त्री काश्मीर संस्कृत
ग्रन्थावली, श्रीनगर, 1921, 1923, 1926, 1929, 1930, 1933,
1935.

हिन्दी-ग्रन्थ

सर्वदर्शनसंग्रह, माधवाचार्य, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1964

उपाध्याय बलदेव, भारतीयदर्शन, शारदा मन्दिर, वाराणसी, 1971

कविराज गोपबोनाथ, भारतीय संस्कृति और साधना, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद,
पटना, 1963

चतुर्वेदो, कैलाशनाथ, महाकवि कालिदास, ग्रन्थम्, रामबाग, कानपुर, 1985

तिवारी रमाशंकर, महाकविकालिदास, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1971

मिश्र कैलाशपति, काश्मीर शैवदर्शन, अर्द्धनारोश्वर प्रकाशन, वाराणसी, 1982

मिश्र रघुनाथ, चिदगगनचन्द्रिका, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।

षडवंशी शैवमत, प्रथम संस्करण, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना।

व्यास सूर्यप्रकाश, बौद्ध वेदान्त एवं काश्मीर, शैवदर्शन, विवेक पब्लिकेशन्स, अलोगढ़, 1986

शर्मा उमाशंकर, सर्वदर्शन संग्रह, हिन्दो व्याख्या, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी,

प्रथम संस्करण, 2964

शर्मा राममूर्ति, अद्वैत वेदान्त, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1972

शास्त्री बलजिन्नाथ, काश्मीर शैवदर्शन, रणवीर केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, जम्मू, 1973

सलमा महफूज, संस्कृत नाटकों में नायिका भेद, दिल्ली, 1977

तिर्रे अकबर भाग-1 § हिन्दो § दिल्ली, 1988

तिर्रे अकबर भाग-2 § उद्दू § अलोगढ़, 1993

हजेला पुष्पा, कालिदास और प्रकृति, विवेक पब्लिशिंग हाउस, अलोगढ़, 1987

शोध-ग्रन्थ

‘कालिदास के नाम पर प्रचलित चिदगगनचन्द्रिका ग्रन्थ का समीक्षात्मक अध्ययन’

-शमोम अहमद, संस्कृत विभाग, अलोगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलोगढ़, 1992

अंग्रेजी-ग्रन्थ

Chatterji, J.C. Kashmir Shavism, Research of Publication

Department, Government of Jammu and Kashmir, Srinagar, 1962

Dasgupta, S.N. History of Indian Philosophy, Vol. S. IIV,

Cambridge University Press, 1961-62,

- Gopal Ram, Kalidasa- His art and culture,
I edition, Naurang Rai concept Publishing
company, H-13 Bali Nagar, New Delhi, 1984.
- Kalla, L.D. , The Birth Place of Kalidasa, Delhi University,
Publication No. I 1926
- Karmakar, R.D. Kalidasa, Karnatak University Dharwar, 1960
- Kumar , P.N., Sakti and her episodes, Eastern Book Linkers,
Delhi, Ist Edition, 1981
- Kundu Nundolal, Non dualism in saiva and sakta philosophy,
Shri Bhartiya Jogeshwari Math, Calcutta.
- Pandey, K.C., Abhinavagupta, An Historical and Philosophical
Study, 2nd Chowkhamba, 1963.
- Pathak. V.S., History of Saiva cults in Northern India,
Varansi, 1960.
- Rastogi Navjivan, The Krama Tantricism of Kashmir, Motilal
Banarsidas, Delhi, 1979.
- Ramaswari Shastri, K.S., Kalidasa, Srinivas Vilas Press,
Srirangam, 1960, IInd Edition.
- Sharma L.N. Kashmir Shivism, Bhartiya Vidya Prakashana,
Varansi, 1972
- Singh, Amaldhari , Kalidasa- A Critical study, Bhartiya Vidya
Prakashan, Delhi, Varansi
- Sinha, Yadunath, A History of Indian Philosophy, Vol.2,
Central Book Agency, Calcutta, 1952